www.thearyasamaj.org

VISHVA–JYOTI R. N. NO. 1/57 ISSN 0505-7523
REGD. NO. PB-HSP-01
CURRENCY PERIOD: (1.1.2012 TO 31.12.2014)

६२, ६ सितम्बर–2013

विश्वज्योति

विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान

साधु आश्रम, होश्यारपुर

एक प्रति का मूल्य : १० रुपये

www.thearyasamaj.org

संस्थापक–सम्पादक :

स्व. पद्मभूषण आचार्य (डॉ.) विश्वबन्धु

सम्पादक:

प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल

(सञ्चालक)

आदरी सह-सम्पादक :

प्रो. त्रिलोचनसिंह बिन्द्रा

उप–सम्पादक :

डॉ. देवराज शर्मा

परामर्शक–मण्डल :

डॉ. दर्शनसिंह निर्वैर

होश्यारपुर

डॉ. (श्रीमती) कमल आनन्द

चण्डीगढ़

डॉ. जगदीशप्रसाद सेमवाल

होश्यारपुर

डॉ. (सुश्री) रेणू कपिला

पटियाला

शुल्क की दरें

आजीवन (भारत में)	:	१२०० रु.	आजीवन (विदेश में)	:	३०० डालर
वार्षिक (भारत में)	:	१०० रु.	वार्षिक (विदेश में)	:	३० डालर
सामान्य अङ्क (भारत में)	:	१० रु.	सामान्य अङ्क (विदेश में)	:	३ डालर
विशेषाङ्क (एक भाग भारत में)	:	२५ रु.	विशेषाङ्क (एक भाग विदेश में)	:	६ डालर

विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, साधु आश्रम,
होश्यारपुर–146 021 (पंजाब, भारत)

दूरभाष : कार्यालय : 01882-223581, 223582, 223606
सञ्चालक (निवास) : 01882-224750, प्रैस : 231353

E-mail : vvr_institute@yahoo.co.in
Website : www.vvrinstitute.com

www.thearyasamaj.org

विषय-सूची

लेखक	विषय	विधा	पृष्ठांक
श्री बाबू लाल शर्मा प्रेम	मेरा देश	कविता	2
श्रीकान्त : स्त्री-विमर्श का उपन्यास (भाग-2)	डॉ. भवानीलाल भारतीय	लेख	3
डॉ. त्रिलोचन सिंह बिन्द्रा	महाभारत में धर्म का स्वरूप	लेख	8
श्री आशीष कुमार चौधरी	वैदिक वाङ्मय में तिथियों की अवधारणा	लेख	11
डॉ. राजवीर आर्य	श्रीमद्भगवद्गीता की महिमा एवं सामान्य परिचय	लेख	15
डॉ. विजयप्रकाश त्रिपाठी	उद्बोधन प्रसंग- भीतर की पुस्तक भी पढ़िए	लेख	18
श्री वीरेन्द्र नाथ भार्गव	संत श्री शंकरदेव	लेख	20
डॉ. उमा रानी	वेदों में राष्ट्रियचिन्तनम्	लेख	22
श्री ठाकुरदास कुल्हारा	तीज त्यौहार पर्व – मिलजुल मनायें हम	कविता	25
प्रो. देवदत्त भट्टि	वेदों में कृषि	लेख	26
डॉ. रीना तलवाड़	वैदिक साहित्य में वृक्षों की प्रासंगिकता	लेख	29
डॉ. महेश सिंह यादव	सन्त पलटू साहिब-एक परिचय	लेख	32
सुश्री मोनिका भाटी	पर्यावरण संरक्षण सम्बन्धी पौराणिक एवं आधुनिक प्रयास	लेख	35
प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल	श्रीमद्भगवद्गीता में अर्जुन के मोह का कारण	लेख	41
	विविध-समाचार		50
	संस्थान-समाचार		52

www.thearyasamaj.org

विश्वज्योति

इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागात्॥ (ऋ. १,११३,१)

वर्ष ६२ } होश्यारपुर, भाद्रपद २०७०; सितम्बर २०१३ { संख्या ६

मयि त्यदिन्द्रियं बृहन्
मयि दक्षो मयि क्रतुः।
घर्मस्त्रिशुग्वि राजति,
विराजा ज्योतिषा सह ब्रह्मणा तेजसा सह॥

(यजु. 38. 27)

(नैवेद्य रूप दूध और घृत से भरी) कढ़ाई (विराजा ज्योतिषा सह, ब्रह्मणा तेजसा सह) विराट् ज्योति के साथ बृहत् तेज के साथ खूब लस-लस करती हुई (विराजति) चमक रही है। मेरे अन्दर भी जीवन की (घर्मः) गरमी का ऐसे ही विस्तार और प्रकाश हो, जिससे मेरी (दक्षः) शक्ति बढ़े, (क्रतुः) क्षमता और उत्साह बढ़े। (वेदसार-विश्वबन्धुः)

www.thearyasamaj.org

मेरा देश

–श्री बाबू लाल शर्मा प्रेम

प्राण से प्यारा मेरा देश,
नयन का तारा मेरा देश
उठो इसकी रक्षा में आज,
लगा दें अपना जीवन प्राण!
देश पर हो जायें बलिदान!!

यही सुख–सम्पति का आगार
यही धन रत्नों का भंडार
विश्व में ऊँचा जिसका भाल
झुकाता शीश जिसे संसार

जगत से न्यारा मेरा देश,
नयन का तारा मेरा देश,
चलो इसकी सीमा पर आज,
शत्रु का चूर करें अभिमान!
देश पर हो जायें बलिदान!!

निर्झरों नदियों के उद्गार,
गा रहे इसकी जय–जयकार
मूक हैं पर्वत औ पाषाण
छिपाये संस्कृति का विस्तार

दूर तक सारा मेरा देश,
नयन का तारा मेरा देश,
बढ़ो इसके पौरुष का आज
तान हिमगिरि पर नया वितान।
कोटि जन हो जायें बलिदान॥

– इंद्रपुरी, पो. मानसनगर, लखनऊ–23

www.thearyasamaj.org

श्रीकान्त : स्त्री-विमर्श का उपन्यास (भाग-2)

–डॉ. भवानीलाल भारतीय

साहित्य में स्त्री-विमर्श की जो बार-बार चर्चा होती है, उसका प्रायोगिक विवेचन शरत ने अपने उपन्यासों में यों तो सर्वत्र किया है, किन्तु श्रीकान्त में उसे विशिष्ट महत्त्व मिला है। ध्यान देने की बात है कि उसके सभी प्रमुख नारीपात्र मर्यादा के कथित राजमार्ग को छोड़ चुके हैं। वे विपथगामी बन चुके हैं। अन्नदा दीदी, अभया तथा राजलक्ष्मी की चर्चा हम कर चुके हैं। उपन्यास के चतुर्थ पर्व में वैष्णवी कमललता की अवतारणा की गई है। इसकी पृष्ठभूमि में बंगाल में चैतन्यदेव (गौरांग महाप्रभु) द्वारा प्रवर्तित वह वैष्णव धर्म है जिसमें नवधा भक्तिपूर्वक कृष्ण के नाम कीर्तन तथा वैष्णव मठों में ठाकुर की षोडशोपचार पूजा को महत्त्व मिला था। मुरारीपुर के इस वैष्णव अखाड़े में श्रीकान्त ने देखा कि "पूजा-पाठ, प्रतिमा को नहलाना, शरीर पौंछना, चन्दन लगाना, माला पहनाना, खिलाना – इसमें जरा भी विराम नहीं। ऐसा मालूम हुआ कि पत्थर के देवता ही आठ पहर ऐसी सेवा सह सकते हैं।" कमललता स्वीकार करती है कि "हां, हम लोग इसी को साधना कहते हैं। हमारा और कोई साधन-भजन नहीं है।"

किन्तु कमललता की कथा भी पूर्व वर्णित नारियों से भिन्न नहीं है। जीवन के पूर्वार्द्ध में घटी दुखद घटनाओं को वह भूली नहीं है। उसने श्रीकान्त के समक्ष अपने जीवन के इस दुखद अध्याय को दोहराया था, जिससे उसका विवाह हुआ उसका नाम भी श्रीकान्त था इसलिए कथानायक को इस नाम से पुकारने में उसे संकोच होता है और वह मठ में आये इस अतिथि को 'नये गुंसाईं' कह कर पुकारती है।

युवावस्था में उसका एक अन्य व्यक्ति से सम्बन्ध बनाना और इस पथ-विचलन की सजा के रूप में एक निर्दोष व्यक्ति द्वारा आत्महत्या आदि के प्रसंगों को खुद कमललता ने ही नये गुसांई श्रीकान्त के समक्ष वर्णित किया था। कमललता और मुरारीपुर के वैष्णव-मठ के क्रिया-कलापों का चित्रण कर शरत ने वैष्णव-धर्म के बंगीय-संस्करण को व्याख्यात किया है। बंगाल के बाउल गायकों को भी लेखक ने याद किया है। ये वे वैष्णव वैरागी हैं जो सतत यायावर (घुमक्कड़) रहते हुए वैष्णव गीतों को गाते हैं।

इसी अध्याय में लेखक ने वैष्णव मुस्लमान गौहर का चित्रण किया। गौहर उस मुस्लिम-परम्परा का प्रतिनिधि है जिसमें रहीम, रसखान, रसलीन, ताजबीबी तथा नज़ीर जैसे कवियों की गणना होती है। "गौहर मुसलमान घराने का है। उसके पितामह बाउल, रामप्रसादी तथा

www.thearyasamaj.org

चण्डीदास रचित गीत गाकर भीख मांगते थे।'' गौहर स्वयं सम्पत्तिशाली है किन्तु उसने धन को सदा तुच्छ समझा। वह कविता लिखता है और जैसा कि कवियों में अपनी रचनाओं को सुनाने की घनघोर प्रवृत्ति दिखाई देती है वह गौहर में भी हस्बमामूल मौजूद है। उसने अशोकवाटिका में बंदिनी बना कर रखी गई सीता के कष्टों की कहानी को न केवल छंदोबद्ध किया, विभिन्न स्थानों पर उसे गाकर सुनाया था। उसके कारुणिक अन्त का चित्रण कर शरत ने मुसलमान भक्तों और कवियों की उस परम्परा को याद किया है जो कट्टरवाद तथा साम्प्रदायिक संकीर्णता से कभी प्रभावित नहीं रहे।

'श्रीकान्त' के गौण नारी-पात्रों में शास्त्रज्ञ विदुषी सुनन्दा का स्मरण आवश्यक है। राजलक्ष्मी की सम्पत्ति के मैनेजर कुशारीजी की अनुजवधू सुनन्दा जितनी स्वाभिमानिनी है उससे कहीं अधिक उसका वैदुष्य तथा उसका आदर्शवाद लेखक को स्पृहणीय लगा। अन्यायपूर्वक धनोपार्जन करने को वह अनुचित समझती है। इसीलिए वह सम्पन्न स्थिति वाले जेठ के घर को त्याग कर खण्डहर में पुत्र व पति को लेकर विपन्न स्थिति में रहती है। उसकी यह टूटी-फूटी झोंपड़ी भी धन्य हो गई जहां शास्त्र-ग्रन्थों का पठन-पाठन व चिंतन होता है। राजलक्ष्मी को सुनन्दा के इस खण्डहरप्राय घर में योगवासिष्ठ जैसे दर्शनग्रन्थ के पन्ने छितरे बिखरे दिखाई पड़े। पूछने पर सुनन्दा के पुत्र ने बताया कि वह मां से इस ग्रन्थ का उत्पत्ति प्रकरण पढ़ता है। किन्तु इस नारी का राजलक्ष्मी द्वारा किया गया विश्लेषण कुछ भिन्न प्रकार का है। **''जब तक सुनन्दा की यह पोथी की विद्या मनुष्य के सुख-दुःख, भलाई-बुराई, पाप-पुण्य और लोभ-मोह के साथ सामञ्जस्य न कर सकेगी तब तक पुस्तकों में पढ़े हुए इस कर्त्तव्य-बोध से संसार में किसी का भी कल्याण नहीं होगा।''**

निश्चय ही 'श्रीकान्त' नारीपात्रों को प्रधानता देकर लिखा गया है। यदि इसमें वर्णित पुरुषपात्रों की चर्चा करें तो नायक के बचपन के साथी इन्द्रनाथ, अभया के साथ बर्मा आने वाले रोहिणी बाबू तथा गंगामाटी गांव में राजलक्ष्मी के अतिथि बन कर आये युवा संन्यासी आनन्द (वज्रानन्द) का उल्लेख हो सकता है। सुपठित तथा चिकित्सा-शास्त्र की उपाधियुक्त संन्यासी आनन्द का सेवाभाव तथा जन-कल्याण के लिए समर्पित जीवन हमें रामकृष्ण मिशन के उन सेवाभावी साधुओं का स्मरण कराता है जो स्वामी विवेकानन्द की प्रेरणा से संघबद्ध होकर समाज-सेवा में प्रवृत्त हुए थे। आनन्द ने बंगाल की माटी को धन्य माना जहां भ्रमण करते हुए उसे उन महीयसी महिलाओं का स्नेह मिला जो बहन और मां के प्यार का स्मरण कराता है और बेगानेपन का अहसास नहीं होने देता। यही कारण है कि राजलक्ष्मी को वह दीदी कह कर पुकारता है।

www.thearyasamaj.org

श्रीकान्त : स्त्री-विमर्श का उपन्यास

श्रीकान्त का सांस्कृतिक दृष्टि से अध्ययन भी आवश्यक है। यों तो बंकिम, रवीन्द्र तथा शरत की कथाकृतियों में बंगीय-जीवन की अविस्मरणीय झलक यत्र-तत्र सर्वत्र दिखाई देती है। तथापि बंगभूमि की अस्मिता तथा बंगाल के जनजीवन को जितनी सूक्ष्मता एवं गहराई से शरत ने अंकित किया वह अनुपम है, अनन्य है। भारत के नव-जागरण में बंगीय महापुरुषों ने जो प्रभावशाली भूमिका निभाई है उसे ठीक प्रकार से समझा जाना चाहिए। राजा राममोहन राय एक प्रमुख धर्म-सुधारक तथा समाज-संशोधक ही नहीं थे वे सच्चे अर्थ में आधुनिक भारत के प्रतिनिधि थे। कालान्तर में बंगाल में देवेन्द्रनाथ ठाकुर, बंकिमचन्द्र चटर्जी, परमहंस-रामकृष्ण, स्वामी विवेकानन्द, पं. ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, महर्षि अरविंद तथा कविगुरु रवीन्द्रनाथ जैसे कृति-पुरुषों ने जन्म लेकर बंगधरा को धन्य बनाया था। बंगाल की यह गरिमा और अस्मिता वहां के लेखकों की रचनाओं में सर्वत्र मुखरित हुई है। वंदे मातरम् को चाहे समग्र भारत राष्ट्र ने अपने राष्ट्रगीत के रूप में सम्मान दिया किन्तु कवि ने इसी गीत को अपनी प्रिय बंगभूमि को लक्ष्य में रख कर ही लिखा था।

शिक्षा, संस्कृति तथा साहित्य के ऊँचे पायदानों पर स्थान बनाने वाले बंगालीवर्ग का भद्रलोक हिन्दीभाषी लोगों को पंछाही (पश्चिम का) कहे तो बात समझ में आती है। उनके लिए हिन्दी बोलने वाले बिहार और उत्तरप्रदेश के लोग 'पश्चिम' के हैं। वे इन प्रदेशों के लोगों को हिन्दुस्तानी कहते हैं। मानो बंगाल हिन्दुस्तान से कोई पृथक् देश है। तभी तो श्रीकान्त ने बचपन में ड्योढी पर हिन्दुस्तानी दरबान को तुलसीदासी रामायण (रामचरितमानस) का गान करते सुना। वस्तुतः शरत के सभी उपन्यास और श्रीकान्त भी इसका अपवाद नहीं है, बंगाल के हिन्दू-समाज की व्यथा-कथा का जीवन्त चित्र उपस्थित करते हैं।

लड़की को जन्म देने वाला बंगाल का हिन्दू विवाह के अवसर पर उसे दिये जाने वाले दहेज को जुटाने में स्वयं के लिए अकृतकार्य महसूस करता है। इसके साथ जुड़ी है कुलीनप्रथा। यदि कुलीन परिवार में जन्मी पुत्री को तत्सदृश कुलीन वर न मिले तो पिता की पीड़ा की कोई सीमा नहीं रहती। तभी तो राजलक्ष्मी के पिता ने बूढ़े और लालची कुलीन वर से बहुत मोलभाव कर उसे सत्तर रुपये पर राजी किया कि वह उसकी दोनों बेटियों (सुरलक्ष्मी तथा राजलक्ष्मी) से एक ही वेदी की परिक्रमा कर उनसे विवाह कर लें। राजलक्ष्मी के जीवन की यह दुर्घटना ही थी।

भारत के साधु-समाज का भी एक रोचक किन्तु यथार्थ पर आधारित चित्र इस उपन्यास में मिलता है। श्रीकान्त का साधु-मण्डली में प्रविष्ट होना इन सतत यायावर साधुओं की संगत में निरन्तर घूमना तथा अनेक अनुभव उपार्जित

www.thearyasamaj.org

करना विस्तार से वर्णित है। जैसे न्यायदर्शन में धुंवे को देख कर आग का अनुमान किया जाता है उसी प्रकार एक आम्रवाटिका में धुंवा देखकर श्रीकान्त ने वहां साधु-मण्डली की उपस्थिति का अनुमान कर लिया। धूनी पर चाय का पानी उबल रहा था, समीप ही गांजे की चिलम तैयार की जा रही थी और एक बच्चा संन्यासी (साधु का गुटका संस्करण) बकरी दुह रहा था। ऐसे अनेक दिलचस्प विवरण भारत के साधु-समाज के यथार्थ को दर्शाते हैं।

बंगाल और समीपवर्ती बर्मा में बढ़ती मुस्लिम आबादी को लेखक ने अनुभव किया था। अन्ततः बंगाली मुसलमानों ने मिस्टर जिन्ना का साथ देकर बंगाल का विभाजन करवाया। यदि 1946 में अविभाजित बंगाल के प्रीमियर (मुख्यमंत्री) के पद पर हसन शहीद सुहरावर्दी जैसा कट्टर लीगी नहीं होता तो उस वर्ष का वह हत्याकाण्ड भी घटित नहीं होता जिसे डाइरेक्ट एक्शन कह कर जिन्ना ने हवा दी थी। अभया ने तो बर्मा में मुसलमानों की बढ़ती संख्या को शिद्दत से अनुभव किया था। उसने भविष्यवाणी-सी की थी-हमारे देश के (बंगाल) समान एक दिन बर्मा भी मुसलमानों से भर जायेगा। यह समस्या दक्षिण-पूर्वी ऐशिया में सर्वत्र दिखाई दे रही है।

श्रीकान्त में भी शरत के अन्य उपन्यासों की भांति बंगाल के ग्राम्य अंचल का आकर्षक चित्रांकन हुआ है। साधारण मिट्टी से बने कच्चे मकान, बांस और आमों के कुञ्ज, घर के पीछे के पोखरे, जिनमें गृहस्थियों को प्रचुर मात्रा में मछली मिल जाती है। जमींदार की बैठक और दुर्गा का मंदिर जिसे ये लोग चण्डीमण्डप कहते हैं। बंगीय वनश्री तथा वहां के सरल ग्राम्यजीवन का चित्रण राजलक्ष्मी के जमींदारी के गांव गंगामाटी के चित्रण में देखा जा सकता है। यहां सवर्ण कायस्थ और ब्राह्मणों का निवास है तो निम्न समझे जाने वाले डोम भी यहीं रहते हैं। इनके विवाह सम्पन्न कराने वाले राखाल पण्डित ने विवाह संस्कार के समय मंत्रोच्चारण किया-

''बोलो मधु डोमाय कन्याय नमः।' दूल्हे ने यह वाक्य बोल दिया। पुनः पण्डित ने कन्या से कहा- 'बोलो, भगवती डोमाय पुत्राय नमः'। इस बीच दूसरे पक्ष के शिबू पण्डित ने ऐतराज़ किया और कहा यह मन्तर नहीं हैं। इस ग्रामीण विवाह को देख कर श्रीकान्त को कहना पड़ा-दोनों ही महापण्डित थे।

साम्राज्यवादी शोषण को शरत ने निकट से देखा था। उनके जीवन का अनुशीलन करने से ज्ञात होता है कि उन्होंने देश के स्वाधीनता संग्राम में भाग लिया था। वे कांग्रेस के सक्रिय सदस्य थे तथा उन्होंने प्रान्तीय स्तर के राजनैतिक सम्मेलनों में भाग लिया था। आलोच्य उपन्यास में वे साम्राज्यवादी शासकों की शोषणवृत्ति को याद करते हैं। उनकी दृष्टि में मालदारों को मोटा बनाया जा रहा है। मज़दूरों का सुख छीना जा रहा

www.thearyasamaj.org

है। उनकी शान्ति गई, रोटी गई और धर्म गया। जीवन का मार्ग संकरा हो गया। शरत के कथा-साहित्य की यह खूबी है कि वे प्रत्यक्ष में किसी राजनैतिकवाद का समर्थन या विरोध नहीं करते। न तो प्रेमचंद की भांति वे गांधीवाद का बखान करते हैं और न यशपाल की भांति अपनी कथा कृतियों में साम्यवादी व्यवस्था की श्रेष्ठता का बखान करते हैं तथापि शोषितों, दलितों तथा मज़लूमों की कथा को शब्द देने में उन्होंने कभी कोताही नहीं की।

दो शब्द उपन्यास के अभिव्यक्ति (कला) पक्ष के लिए। साहित्य या काव्य में सामान्य कथन (अभिधाशैली) को महत्त्व नहीं दिया जाता है। आचार्यों के अनुसार- वक्रोक्तिः यत्र विभूषणं मन्यन्ते। वक्रोक्ति (उक्ति का चमत्कार अथवा कथन-चातुरी) को साहित्य में विभूषण तुल्य स्पृहणीय माना गया है। शरत की लेखनशैली वक्रतापूर्ण कथनों से युक्त है। गंगामाटी से विदा लेते समय श्रीकान्त का कथन विशेष भावना-युक्त है- **''अब मेरा यहां पुनः लौटना सम्भव नहीं है। यहां विदा लेना ऐसा है मानो अपार माधुर्य और वेदना से पूर्ण एक वियोगान्त नाटक की यवनिका गिरी है। नाट्यशाला का दीप बुझ गया है। अपने यायावरी जीवन को एक उपग्रह को उपमा देते हुए श्रीकान्त ने कहा, ''इतने दिनों तक जीवन उपग्रह की भांति व्यतीत हो गया। जिसको केन्द्र बना कर घूमता रहा उसके पास तक पहुंचने का न तो मुझे अधिकार मिला और न दूर जाने की अनुमति मिली।''**

व्यंग्य-कथन की छटा देखनी हो तो निर्धन कन्या पुंटु के विवाह का प्रसंग देखें। इस विवाह में दहेज का सारा भार स्वयं श्रीकान्त ने उठाया था। इसी तथ्य को लक्षित कर वह कन्या के ससुर से कहता है- **''आपका भाग्य प्रबल है। न वर को पहचानता हूँ और न कन्या को, फिर भी रुपया मेरा व्यय हो रहा है और वह आपके संदूक में जा रहा है। इसे भाग्य नहीं कहते तो किसको कहते हैं।''**

निश्चय ही शरत के साहित्य-गगन में श्रीकान्त की भ्रमण-कहानी अमृतस्रावी चन्द्रमा के तुल्य शान्तिप्रद तथा आमोदवर्धक है।

-3/5, शंकर कालोनी, श्रीगंगानगर

www.thearyasamaj.org

महाभारत में धर्म का स्वरूप

–डॉ. त्रिलोचन सिंह बिन्द्रा

महाभारत में युधिष्ठिर के धर्मविषयक प्रश्न पूछने पर भीष्मपितामह का यह कथन धर्म की महत्ता के विषय में स्पष्ट संकेत देता है–

सर्वत्र विहितो धर्मः स्वर्ग्यः सत्यफलं तपः।
बहुद्वारस्य धर्मस्य नेहास्ति विफला क्रिया॥

(शा. पर्व. 174.2)

अर्थात् सब आश्रमों में वेद के द्वारा धर्म का विधान किया गया है, जो वस्तुतः अदृष्ट फल देने वाला होता है। सद्वस्तु की तपस्या का फल मरण से पूर्व ही प्राणी को प्राप्त होता है। धर्म के द्वार बहुत से हैं, जिनके द्वारा वह अपनी अभिव्यक्ति करता है। धर्म की कोई भी क्रिया निष्फल नहीं होती। धर्म का कोई भी अनुष्ठान व्यर्थ नहीं जाता। अतः धर्म का आचरण करना सदा प्रशंसनीय होता है।

सांसारिक परिस्थितियां श्रद्धावान् लोगों के भी हृदय में संशय उत्पन्न कर देती हैं। वनवास में युधिष्ठिर को अपनी दुरावस्था पर तथा अपनी दीन-हीन दशा पर बहुत ही दुःख होता है। ऐसी दशा के सम्बन्ध में लोमश ऋषि को वे पूछते हैं– 'भगवन्, मेरा जीवन अधार्मिक नहीं कहा जा सकता, फिर भी मैं निरन्तर दुःखों से प्रताड़ित हो रहा हूँ, दूसरी ओर अधर्म का सेवन करने वाले लोग सुख-सृमिद्ध का भोग कर रहे हैं। इसका क्या कारण है? युधिष्ठिर के इस प्रश्न के उत्तर में लोमश ऋषि उत्तर देते हैं –

वर्धत्यधर्मेण नरस्ततो भद्राणि पश्यति।
ततः सपत्नाञ्जयति समूलस्तु विनश्यति॥

(वनपर्व. 94.4)

अधर्म के आचरण से मनुष्य की वृद्धि जो दिखाई देती है, वह स्थायी नहीं होती। मनुष्य अधर्म से बढ़ता है, वह शत्रुओं को भी जीतता है, पर अन्ततः वह मूलसहित नष्ट हो जाता है। मानव-जीवन का कल्याण धर्म के आचरण में ही है, जो सकाम भाव से कार्य करने पर इस लोक के फलों को देता है और निष्काम भाव से कर्म करने पर मोक्ष की प्राप्ति करवाता है। अतः धर्म से विहीन कर्म का सम्पादन कल्याणकारी नहीं होता–

धर्मादपेतं यत्कर्म यद्यपि स्यान्महाफलम्।
न तत् सेवेत मेधावी न तद्धितमिहोच्यते॥

(शा. पर्व, 293.8)

इस धर्म का साम्राज्य बहुत ही विशाल होता है। यदि किसी सभा में न्याय के लिए व्यक्ति उपस्थित हो और उस सभा के सभासद् उसके वचनों को अनसुना कर देते हैं और उसे न्याय नहीं प्रदान करते तो उस समय धर्म को अत्यन्त पीड़ा पहुँचती है। इस सम्बन्ध में विदुर जी का वचन कितना मार्मिक है–

द्रौपदी प्रश्नमुक्त्वैवं रोरवीति ह्यनाथवत्।
न च विब्रूत तं प्रश्नं सभ्या धर्मोऽत्र पीड्यते॥

(सभापर्व, 68. 59)

www.thearyasamaj.org

डॉ. त्रिलोचन सिंह [illegible]न्दा

किसी राजसभा में जो व्यक्ति दुःखों से प्रताड़ित होकर न्याय मांगने के लिए जाता है, वह जलते हुए आग के गोले के समान होता है, उस समय सभासदों का पवित्र कर्त्तव्य है कि वे सच्चे धर्म के द्वारा उस भड़क रही अग्नि को शान्त करें। यदि अधर्म से युक्त होकर व्यक्ति धर्मसभा में उपस्थित होता है तो ऐसी स्थिति में सभासदों का यह धर्म होता है कि ऐसे अधर्मी व्यक्ति को बाहर निकालकर फैंक दें। यदि वे ऐसा नहीं करते तो वे सभासद् स्वयं ही अधर्म से विद्ध हो जाते हैं। महाभारत का कथन है कि जिस सभा में निन्दित व्यक्ति की निन्दा नहीं की जाती, वहां उस सभा का अध्यक्ष आधे पाप का स्वयं भागीदार होता है। निन्दित व्यक्ति को तो पाप का एक चौथाई भाग मिलता है और शेष पाप का भाग शेष सभासदों को मिलता है (सभापर्व अध्याय, 68)।

जहां पर सभासदों के देखते हुए भी धर्म अधर्म के द्वारा तथा सत्य असत्य के द्वारा मारा जाता है, वहां पर सभासदों की ही हत्या समझनी चाहिए-

यत्र धर्मो हि अधर्मेण सत्यं यत्रानृतेन च।
हन्यते प्रेक्षमाणानां हतास्तत्र सभासदः॥

(उद्योगपर्व, 95.48-49)

जो सभासद् अधर्म को देखते हुए भी चुप बैठे रहते हैं और उस अन्याय या अधर्म का प्रतिकार नहीं करते, उन्हें धर्म उसी भान्ति तोड़ डालता है, जिस प्रकार नदी किनारे पर उगने वाले पेड़ों को अपने वेग से तोड़ कर गिरा देती है-

धर्म एतानारुजति यथा नद्यनुकूलजान्।
ये धर्ममनुपश्यन्तस्तूष्णीं ध्यायन्त आसते॥

(उद्योगपर्व, 95. 50-51)

विराटपर्व में भी ऐसा ही प्रसंग आता है। जब द्रौपदी के साथ किए गए कीचक के दुष्कृत्यों पर राजा विराट ध्यान नहीं देता तथा उसे अन्याय के मार्ग से रोकने का प्रयत्न नहीं करता, तब सैरंध्री नाम से महारानी की सेवा-शुश्रूषा करने वाली अपमानिता द्रौपदी भरी सभा में राजा विराट को चुनौती देती हुई कहती है-

न राजा राजवत् किंचित् समाचरति कीचके।
दस्यूनामिव धर्मस्ते न हि संसदि शोभते॥

(विराटपर्व, 16.31)

राजा का धर्म अन्याय करने वाले को दण्ड देना है, परन्तु तुम राजा होकर भी कीचक के प्रति राजा के समान कुछ भी नहीं करते हो। यह धर्म तो डाकुओं का है। सभा में तुम्हें यह कदापि शोभा नहीं देता, कितनी उग्र है यह भर्त्सना। कीचक परस्त्री के साथ भयंकर अपराध करने को तैयार है। ऐसी दशा में राजा विराट को कीचक सेनापति को दण्ड देना न्यायसंगत है।

महाभारत के युग में ऐसे व्यक्ति जिन्हें अभी मूँछें भी नहीं आई थीं, घर-द्वार से नाता तोड़ कर, माता-पिता तथा गुरु एवं बन्धुओं से नाता तोड़ कर, संन्यासी का बाना पहन कर जंगल में तपस्या करने लगे थे-

केचिद् गृहान् परित्यज्य वनमभ्यागमन् द्विजाः।
अजातश्मश्रवो मन्दाः कुले जाताः प्रवव्रजुः॥
धर्मोऽयमिति मन्वानाः समृद्धा ब्रह्मचारिणः।
त्यक्त्वा भ्रातृन् पितृंश्चैव तानिन्द्रोऽन्वकृपायत॥

(शांतिपर्व, 11.2-3)

उस समय समाज को ऐसी विकट ध्वंसकारी समस्या से बचाने की आवश्यकता थी। शान्तिपर्व

www.thearyasamaj.org

के प्रारंभ में इस भीषणता का पूरा परिचय मिल जाता है। युधिष्ठिर यहां पर वर्णाश्रम धर्म की अवहेलना कर निवृत्तिमार्ग के पथिक के रूप में चित्रित किए गए हैं। वे आरण्य-निवास के प्राकृतिक सुख का वर्णन बहुत ही मार्मिकता के साथ करते हैं (शान्तिपर्व अ.9)।

ऋणत्रय की कल्पना वैदिक आचार की पीठस्थली है। अपने ऋषियों, पितरों तथा देवों के ऋणों को उतारे बिना संन्यास ग्रहण करना निरर्थक है। इसीलिए मानव-जीवन के लिए महाभारत का आदर्श है-वर्णाश्रम धर्म का विधिवत् पालन। अन्य तीन आश्रमों का निर्वाह करने के लिए गृहस्थ-धर्म ही हमारा परम ध्येय है। इसका उपदेश महाभारत में नाना प्रकारों से किया गया है। इसके अतिरिक्त महाभारत में सामान्य धर्म का इस प्रकार से वर्णन है-

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चाप्यवधार्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्॥

(शान्तिपर्व, 290.23)

अपने लिए जो वस्तु प्रतिकूल हो, वह दूसरों के लिए भी कभी नहीं करनी चाहिए। धर्म का यह मौलिक तत्त्व महाभारत की दृष्टि से धर्म का सर्वस्व है। अपने प्रतिकूल वस्तुओं का आचरण तो दूसरों के साथ कभी भी नहीं करना चाहिए-

परेषां यदसूयेत न तत् कुर्यात् स्वयं नरः।
यो ह्यसूयुस्तथा युक्तः सोऽवहासं नियच्छति॥

(शांतिपर्व, 290.24)

दूसरे व्यक्तियों के जिस कार्य की हम निन्दा करते हैं, उसे हमें कभी स्वयं भी नहीं करना चाहिए।

सायंप्रातर्विभज्यान्नं स्वकुटुम्बे यथाविधि।
दत्त्वातिथिभ्यो देवेभ्यः पितृभ्यः स्वजनाय च।
अवशिष्टानि येऽश्नन्ति तानाहुर्विघसाशिनः॥

(शांतिपर्व, 11.23-24)

पञ्चमहायज्ञों का विधिवत् अनुष्ठाता गृहस्थ ही सब आश्रमों में श्रेष्ठ माना गया है। जो सायंप्रातः अपने कुटुम्बियों के लिए अन्न का विभाजन करता है। अतिथि, देव, पितृ तथा स्वजन को देने के बाद अवशिष्ट अन्न को स्वयं ग्रहण करता है, वह सच्चा गृहस्थ है। असामयिक वैराग्य से उद्विग्नचित्त युधिष्ठिर के गृहस्थाश्रम धर्म को त्यागकर असमय में निवृत्तिमार्ग का पथिक होने पर नकुल ने उसकी भयंकर निन्दा की है- हे युधिष्ठिर! महायज्ञों का सम्पादन किए बिना, पितरों का श्राद्ध किए बिना, तीर्थों में स्नान किए बिना यदि संन्यास लिया जाता है तो वह व्यक्ति वायु के झौंके से प्रेरित मेघखण्ड के समान नष्ट हो जाता है।

अनिष्ट्वा च महायज्ञैरकृत्वा च पितृस्वधाम्।
तीर्थेष्वनभिसंप्लुत्य प्रव्रजिष्यसि चेत् प्रभो॥
छिन्नाभ्रमिव गन्तासि विलयं मारुतेरितम्।
लोकयोरुभयोर्भ्रष्टो ह्यन्तराले व्यवस्थितः॥

(शांतिपर्व,12.33-34)

महाभारत का धर्म तो अतिविस्तृत है। पर यहां पर केवल उसका संक्षेप रूप में ही वर्णन किया गया है।

—साधु आश्रम, होशियारपुर।

www.thearyasamaj.org

वैदिक वाङ्मय में तिथियों की अवधारणा

–श्री आशीष कुमार चौधरी

भारतीय आर्षज्ञान की परम्परा में वेदों की मान्यता स्थापित है। वेद ज्ञान का अक्षय भण्डार है। यह अनादि है, अत: अपौरुषेय है। इसकी चार संहिताओं ऋक्, साम, यजु एवं अथर्व के साथ ब्राह्मण, आरण्यक एवं उपनिषद्-ग्रन्थों को भी ब्रह्म के निःस्वास से उद्भूत माना गया है। अत: मन्त्र और उसके ब्राह्मण ग्रन्थों को भी वेद कहा गया है – **मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्।** भारतीय परम्परा के अनुसार प्राचीन ऋषियों ने मन्त्रों का दर्शन किया। वे स्रष्टा नहीं, द्रष्टा कहलाये। इन मन्त्रों के रूप में उन्होंने चराचर जगत् का दर्शन किया। प्रकृति को गहराई से देखा, चन्द्रमा, सूर्य तारे एवं ग्रहों का उदय-अस्त होते देखा। उन्होंने आश्चर्य व्यक्त किया कि रात को ये तारे कहाँ से आते हैं? दिन में कहाँ चले जाते हैं?

इसी प्रकृति-निरीक्षण के क्रम में उन्होंने अहोरात्र और संवत्सर का अध्ययन किया। सूर्य के उदित होने से अहोरात्र और ऋतुसम्पात से संवत्सर का अनुभव किया और उसकी गणना की। वेदों में काल की एक ईकाई के रूप में तिथि का उल्लेख बार-बार हुआ है। हमारा वैदिक-समाज यज्ञपरक था। यज्ञ के लिए कालनिर्धारण अनिवार्य था। इसलिए ज्योतिष-शास्त्र को वेदाङ्ग के रूप में प्रतिष्ठा मिली। तभी तो भास्कराचार्य ने सिद्धान्तशिरोमणि में लिखा है– **वेदास्तावद् यज्ञकर्मप्रवृत्ता यज्ञाः प्रोक्तास्ते तु काला-श्रयेण। शास्त्रादस्मात् कालबोधो यतः स्यात् वेदाङ्गत्वं ज्योतिषस्योक्तमस्मात्॥**

वेद यज्ञ करने के लिए प्रवृत्त करते हैं, यज्ञ समय पर आश्रित है। सही समय में किया गया यज्ञादि कर्म सफल एवं गलत समय में किया गया यज्ञादि कर्म विफल होता है। यज्ञादि कर्म करने के लिए समय की गणना करना परमावश्यक है। समय में भी सर्वप्रथम तिथि की गणना होती है। वेदों में भी तिथि की चर्चा अनेक स्थलों पर देखने को मिलती है। अहोरात्र की गणना में सूर्य से प्रतिभासित दिन की गणना अव्यावहारिक थी, क्योंकि निरीह आँखों से देखकर कोई दो दिनों में अन्तर जान नहीं सकता था किन्तु रात्रि में चन्द्रमा को देखकर उसकी शृंङ्गोन्नति देखकर गणना व्यावहारिक थी, इसलिए संक्रान्ति की गणना की अपेक्षा तिथियों की चर्चा वेदों में प्रचुर मात्रा में मिलती है।

चन्द्रमा प्रतिदिन राशिचक्र में पश्चिम से पूर्वाभिमुख 13.10.55 अंश जाता है और सूर्य 59.8 गतिशील रहते हैं, इसी कारण से चन्द्रमा प्रतिदिन सूर्य से 12^0 11.47 कला पूर्व की ओर आगे चलते हैं। चन्द्रमा की इस प्रतिदिन की गति से एक-एक तिथि होती है। चन्द्रमा की 15वीं कलावृद्धि का नाम शुक्लपक्ष और न्यून का नाम कृष्णपक्ष है। चन्द्रमा जब सूर्य से 180^0 अंश अर्थात् 6 राशि के अन्तर पर होते हैं तो पूर्णमासी तिथि होती है। एवं पूर्व रीति से चन्द्रमा जब 180^0

www.thearyasamaj.org

से 12 अंश 11 कला 87 विकला पूर्व से पश्चिम दिशा की ओर गमन करके 90 अंश पहुँचने पर कृष्णाष्टमी तिथि एवं क्रमशः सूर्य से निकट होने पर एक स्थान में जाने पर अमावस्या तिथि होती है, पुनः क्रम से जब चन्द्रमा सूर्य से जैसे-जैसे दूर होते जायेंगे वैसे-वैसे चन्द्रकला बढ़ती जाएगी एवं बढ़ते-बढ़ते हुए जब वह 180^0 अंश पर पहुँचेंगे तो पूर्णमासी होती है। चन्द्रमा के उदयान्तर अर्थात् एक उदय से दूसरे उदय पर्यन्त का समय तिथि कहलाती है।[1]

चन्द्रमा एक ही है, यह चन्द्रमा कृष्णपक्ष में क्रमशः 15 दिन घटता है एवं पुनः शुक्लपक्ष में 15 दिन बढ़ता है। चन्द्रमा के अंश ऋण-धन होने का नाम ही कृष्णपक्ष एवं शुक्लपक्ष है।[2] दृष्टिगोचर चन्द्रमा के आधार पर अहोरात्र और मास गणना में पूर्णचन्द्र और शून्यचन्द्र की दो स्थितियाँ सबसे स्पष्ट थीं। अतः वैदिक-वाङ्मय में पूर्णिमा और अमावस्या इन दोनों तिथियों पर आधारित दर्शपौर्णमास वैदिक-काल में पर्याप्त प्रचलित थे। इस शोध लेख में पूर्णिमा एवं अमावस्या तिथियों का विवेचन किया गया है। ब्राह्मणग्रन्थों में अष्टका, उदृष्ट, त्र्यष्टका तिथियों का वर्णन मिलता है-

तस्य व्रातस्य, योऽस्य द्वितीयोऽपानः साष्टकाः॥ (अथर्ववेदः 15.16.2.)

पौर्णमास्यां पूर्वमहर्भवति व्यष्टकायामुत्तरम् अमावास्यायां पूर्वमहर्भवति उदृष्ट उत्तरम्। (तैत्तरीय ब्राह्मणः 1.8.10.2.)

अर्थात् कृष्ण प्रतिपदा से आठवीं तिथि को व्यष्टका तथा शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से आठवीं तिथि को उदृष्ट कहते हैं। सामविधान ग्रन्थ के (2-6.2-8.3-3) इन स्थलों पर कृष्णचतुर्दशी, कृष्णपञ्चमी और शुक्लचतुर्दशी शब्द आये हैं। वेदों में चन्द्रमा की कला के न्यूनाधिक्य का कारण यह बताया गया है कि देवता उसका प्राशन करते हैं-

यत्त्वा देव प्रपिबन्ति तत आ प्यायसे पुनः।
वायुः सोमस्य रक्षिता समानां मास आकृतिः॥
(ऋग्वेद, 10. 85. 5)

यमादित्या अंशुमाप्यायन्ति यमक्षिमक्षितयः पिबन्ति॥ (तैत्तिरीय ब्राह्मणः, 2. 4. 14)

हे चन्द्र! तुम्हारी किरणों का सूर्य कृष्णपक्ष में प्राशन करते हैं, एवं पुनः तुम्हारी किरणें शुक्लपक्ष में बढ़ती हैं, उसके बाद तुम पुनः तेजस्वी होते हो। तुम संवत्सर और मासों के कर्ता हो-

द्वादशारं नहि तज्जराय वर्वर्ति चक्रं परि द्यामृतस्य। आ पुत्रा अग्ने मिथुनासो अत्र सप्त शतानि विंशतिश्च तस्थुः॥ (ऋ. 1. 164. 11)

एक चक्र अथवा संवत्सर में 12 महीने अविचल सनातन हैं और जिसमें सूर्य के पुत्र स्वरूप 360 अहोरात्र भोग हैं। अमावस्या और पौर्णमासी तिथि की चर्चा वेदों में मिलती हैं-

तस्य व्रात्यस्य यदस्य दक्षिणमक्ष्यसौ स आदित्यो यदस्य सव्यमक्ष्यसौ स चन्द्रमाः॥
(अथर्ववेद, 15.18.2)

---

1. यां पर्यस्तमियादभ्युदियादिति सा तिथिः। – ऐतरेय ब्राह्मण, 32. 10.

2. एष हि पञ्चदश्यामवक्षीयते पंचदश्यामापूर्यते। – तैत्तिरीय ब्राह्मण, 1. 5. 10.

www.thearyasamaj.org

उस व्रात्य के अङ्गस्वरूप सूर्य और चन्द्रमा जब एक स्थान में होते हैं तब अमावस्या होती है। उस व्रात्य के दाहिनी आँख सूर्य एवं बायीं आँख चन्द्रमा हैं- **चन्द्रमा अमावास्यायामादित्य-मनुप्रविशति आदित्याद्वै चन्द्रमा जायते।**

(ऐतरेय ब्राह्मण, 40.5)

चन्द्रमा अमावस्या को सूर्य के साथ सम-सूत्रस्थ होता और पुनः उस से अलग होता है- **सोमावास्यायां रात्रिमेतया षोडश्या कलया सर्वमिदं प्राणभृदनुप्रविश्य ततः प्रातर्जायते।**

(शतपथ, 14.4.3.22)

एष वै सोमो राजा देवानामन्नं यच्चन्द्रमाः स यत्रैष एतां रात्रिं न पुरस्तान्न पश्चाद् ददृशे तदिमं लोकमागच्छति स इहैवापश्चौषधीश्च प्रविशति स वै देवानां वस्वन्नं ह्येषाम्। तद्येष एतां रात्रिमिहाऽऽवसति तस्मदमावास्या नाम॥

(शतपथब्राह्मण, 1. 6. 4. 5.)

यह चन्द्रमा अमावस्या को रात्रि में जो आकाश में दिखाई नहीं देता, उसका कारण यह है कि वह पृथ्वी पर आकर, प्राणी, ओषधि वनस्पति इत्यादि में प्रवेश करता है।

चन्द्रमा जिस रात्रि में 16 कलाओं से प्रकाशित होता है, तब सब प्राणियों को सुखप्रद लगता है अर्थात् पौर्णमासी होती है। अमावस्या को दर्श और अमावस्या तथा पूर्णिमा को पर्व कहा जाता है। पूर्णिमा को अनुमति और राका अमावस्या को सिनीवाली एवं कुहू भी कहा जाता है। ऋग्वेद संहिता में मण्डल 2 में राका और सिनीवाली शब्द देखने को मिलते हैं।

आश्रित्य तामामावास्यां पश्यतः सुसमागतौ। अन्योन्यं चन्द्रसूर्यौ तौ यदा तद्दर्श उच्यते॥

(ऐतरेय ब्राह्मण, 32.10)

जिस तिथि में चन्द्रमा और सूर्य समसूत्रस्थ होते हैं, उसको अमावस्या का दर्श कहते हैं। चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या, पूर्णिमा, सूर्य की संक्रान्ति इनका नाम पर्व है (ऐ. ब्रा., 32.10.)।

चतुर्दशी तिथि से संलग्न पौर्णमासी को अनुमति एवं प्रतिपदायुक्त पौर्णमासी को राका कहते हैं। इसी प्रकार चतुर्दशी युक्त अमावस्या को सिनीवाली एवं प्रतिपदायुक्त अमावस्या को कुहू कहते हैं (ऐ. ब्रा., 32.10)। इसी प्रकार गोपथ-ब्राह्मण में लिखा है। क्षय तिथि के सन्दर्भ में ऐतरेय ब्राह्मण में बताया गया है कि-

द्वौ च ते विंशतिश्च ते रात्र्येकादशावमाः॥

(ऐतरेय ब्राह्मण, 32.10)

एक वर्ष में 11 अवम एवं दो वर्ष में 22, इसी प्रकार समझना चाहिए यहाँ स्पष्ट रूप से अवम शब्द तिथि का वाचक है। ऐतरेय ब्राह्मण में वर्ष के 360 दिनों की गणना उपलब्ध होती है। यहाँ दिन के लिए अहद शब्द का प्रयोग हुआ है इस संवत्सर को प्रजापति माना गया है (ऐ. ब्रा., 7.7.)। शतपथ ब्राह्मण में पूर्णिमा के सन्दर्भ में कहा गया है कि इस दिन देवता चन्द्रमा का आवाहन कर यज्ञ करते हैं (श. ब्रा. 6.2.2.17.)। प्रायः यही कारण है कि पूर्णिमा को ब्राह्मण माना गया है तथा अमावस्या को क्षत्रिय कहा गया है (कौषीतकि उपनिषद्, 4-8)।

सभी कामनाओं की पूर्ति करने वाली पूर्णिमा बारे कहा गया है-

www.thearyasamaj.org

कामो पौर्णमासी। (तै. ब्रा., 3.14.15.)

पौर्णमास्याः प्रतिहारः। (ष. ब्रा., 3.4)

अथर्ववेद में अमावस्या के एक पर्याय सिनीवाली को दो देवताओं की बहन मानते हुए उसके प्रति आहुति देते हुए कहा गया है कि हे अल्प चन्द्रकला संयुक्त अमावस्या की अधिष्ठात्री देवते सिनीवालि! हे अनेक स्तुत सिनीवालि! आप देवताओं की स्वसा हैं अर्थात् वृष्टि आदि से स्वयंसारिणी होती है और समान कार्य वाली होने से आप देवताओं की भगिनी हैं। ऐसी आप इस अभिमुख आहूत हवि का सेवन करें और सिनीवालि देवते! आप हमको पुत्र आदि प्रजा दीजिए (अथर्व., 4.2.2 तथा ऋ., 2.33.7)।

ऋग्वेद के अगले मन्त्र में सिनीवाली को विश्वपत्नी, सुन्दर बाहों वाली, सुन्दर अँगुलियों वाली और सुप्रसविनी कहा गया है–

या सुबाहुः स्वंगुरिः सुषूमा बहुसुवरी।
तस्यै विश्वपत्न्यै हविः सिनीवाल्यै जुहोतन॥

(ऋग्वेद, 2.32.7)

इसी सिनीवाली का अगले मन्त्र में कुहू और राका के साथ आवाहन किया गया है। इस प्रकार ऋग्वेद और अथर्ववेद के इन स्थलों पर जिन कुहू एवं सिनीवाली का उल्लेख आया है उनके सम्बन्ध में निरुक्तकार यास्क ने स्पष्ट किया कि ये दोनों देवियाँ हैं। किन्तु यास्क ने याज्ञिक मतों का उल्लेख किया है, जिसके अनुसार ये दोनों शब्द अमावस्या तिथि के वाचक हैं (निरुक्त दैवतकाण्ड)।

यजुर्वेद तैत्तिरीय संहिता में अनेक परस्पर विपरीत किन्तु एक दूसरे के पूरक पदार्थों के साथ पूर्णिमा और अमावस्या का उल्लेख हुआ है (यजु. तैत्तिरीय संहिता, 3.4.4)। यजुर्वेद में दर्श और पौर्णमास इन दोनों तिथियों का उल्लेख विस्तार से हुआ है, क्योंकि इन दोनों तिथियों में से श्रौतयाग प्राचीनकाल में अत्यन्त प्रचलित थे, जिन्हें सभी कामनाओं की पूर्ति करने वाला कहा गया है। अग्निहोत्र के लिए दर्श और पौर्णमास ये दोनों याग क्रमशः अमावस्या एवं पूर्णिमा तिथि को नित्य करने का विधान किया गया है। तैत्तिरीयसंहिता के पंचम प्रपाठक में इन यज्ञों का विस्तारपूर्वक वर्णन है (तैत्तिरीय संहिता, 3.5)।

इसके अतिरिक्त यजुर्वेद में अश्वमेध यज्ञ के सन्दर्भ में तिथियों के वर्णन का संकेत उपलब्ध है जिसका अनेक आधुनिक ज्योतिर्विदों ने उल्लेख किया है– पक्षति अर्थात् प्रतिपदा, निपक्षति अर्थात् द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी, सप्तमी, अष्टमी, नवमी, दशमी, एकादशी, द्वादशी एवं त्रयोदशी तिथि तथा इनके क्रम से– अग्नि, वायु, इन्द्र, सोम, अदिति, इन्द्राणी, मरुत्, बृहस्पति, अर्यमन्, धातृ, इन्द्र तथा यम देवता भी बतलाये गये हैं (यजुर्वेद, 25.4)।

इससे स्पष्ट है कि पूर्णिमा, अमावस्या, अष्टमी तिथियों का वैदिक वाङ्मय में पर्याप्त वर्णन उपलब्ध है।

–अनुसंधानसहायक, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, भोपाल परिसर, भोपाल (म. प्र.)

www.thearyasamaj.org

श्रीमद्‌भगवद्‌गीता की महिमा एवं सामान्य परिचय

–डॉ. राजवीर आर्य

श्रीमद्‌भगवद्‌गीता की महिमा –

'श्रीमद्‌भगवद्‌गीता' एक रहस्यमय ग्रन्थ है। इसमें सम्पूर्ण वेदों का सार संग्रहीत किया गया है। गीता का आशय इतना गम्भीर है कि आजीवन अभ्यास करने पर भी इसका अन्त नहीं पाया जा सकता। प्रतिदिन नये-नये भाव उत्पन्न होते रहते हैं, इससे यह सदा ही नवीन बना रहता है। भगवान् के गुण, प्रभाव और मर्म का वर्णन जिस प्रकार इस गीताशास्त्र में किया गया है, वैसा अन्य ग्रन्थों में मिलना कठिन है। क्योंकि प्रायः ग्रन्थों में कुछ न कुछ सांसारिक विषय मिला रहता है, परन्तु 'श्रीमद्‌भगवद्‌गीता' एक ऐसा अनुपमेय ग्रन्थ है, जिसमें एक भी शब्द सदुपदेश से खाली नहीं है। इसीलिए कहा जाता है कि–

गीता सुगीता कर्त्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिःसृता॥

गीता का हिन्दु धर्म-ग्रन्थों में ही नहीं, विश्व के सम्पूर्ण आध्यात्मिक साहित्य में बहुत ऊँचा स्थान है। यह एक ऐसा सर्वमान्य ग्रन्थ है जिसका स्वदेश और स्वधर्म में ही नहीं, विदेश और परधर्मों में भी बहुत अधिक मान है। गीता भारतीय दर्शनशास्त्र की सर्वोत्कृष्ट परिणति है। गीता के वक्ता हैं भगवान् श्रीकृष्ण और श्रोता हैं वीराग्रगण्य पाण्डुपुत्र अर्जुन।

गीता में सब उपनिषदों का सार आ गया है इसी से इसका पूरा नाम 'श्रीमद्‌भगवद्‌गीता उपनिषद्' है। गीता के प्रत्येक अध्याय के अन्त में जो अध्याय समाप्ति-दर्शनसंकल्प है, उसमें **'इतिश्रीमद्‌भगवद्‌गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे'** इत्यादि शब्द हैं।

गीता का मुख्य प्रतिपाद्य विषय वेदान्त है, किन्तु उसमें अन्य दर्शनों के भी दर्शन होते हैं और साथ में तत्कालीन धार्मिक परम्पराओं, साम्प्रदायिक विचारधाराओं तथा सामाजिक रीति-रिवाजों के बीच कुरुक्षेत्र नामक विशिष्ट भू-खण्ड पर केवल अठारह दिनों तक चलने वाला संग्राम नहीं है, अपितु प्रत्येक सांसारिक जीव के अन्तःकरणरूपी कुरुक्षेत्र में आसुरी-शक्तियों रूपी कौरवों तथा देवी-शक्तियों रूपी पाण्डवों के बीच निरन्तर चलता रहने वाला संघर्ष है। गीता के दिव्य सन्देश के अनुसार मोहमायामस्त, विषय-विलासव्यस्त, संसारसन्तापसन्त्रस्त हर कोई मनुष्य अर्जुन है, जो विविक्तविरक्तवृत्ति रूपी कृष्ण के नेतृत्त्व में निर्लेपभाव तथा निष्काम कर्म के बाणों से तृष्णा-वासना रूपी कौरवों का नाश कर मोक्षरूपी विजय को प्राप्त कर सकता है।

''पद्मपुराण में भगवद्‌गीता का माहात्म्य कुछ और ही प्रकार से वर्णित किया है कि-जो प्रतिष्ठा वेदों में पुरुषसूक्त की है, जो प्रतिष्ठा पुराणों में विष्णुपुराण की है एवं जो प्रतिष्ठा धर्मशास्त्र में

www.thearyasamaj.org

मनुस्मृति की है, वही प्रतिष्ठा महाभारत में भगवद्गीता की है। उसके शब्द इस प्रकार हैं–

वेदेषु पौरुषं सूक्तं पुराणेषु वैष्णवम्।
भारते भगवद्गीता धर्मशास्त्रेषु मानवम्॥

इसी प्रतिष्ठा के कारण विश्व की समस्त प्रसिद्ध भाषाओं में गीता के अनुवाद-भाष्य व्याख्याएँ उपलब्ध होती हैं।''[1]

श्रीमद्भगवद्गीता का सामान्य परिचय–

'श्रीमद्भगवद्गीता' भारतीय साहित्य की अमूल्य निधि है, उपनिषदों का सार है, भारतीय संस्कृति की आत्मा है। सभी विद्वान् यह स्वीकार करते हैं कि दर्शनशास्त्र में गीता से बढ़कर किसी भी भाषा में कोई ग्रन्थ नहीं है। यही कारण है कि गीता का विश्व की सभी भाषाओं में अनुवाद हो चुका है।

गीता के बारें में सबसे विचारणीय बात यह है कि वर्तमान में 'श्रीमद्भगवद्गीता' की जो प्रचलित प्रतियाँ हैं, उसमें गीता के केवल 700 श्लोक हैं यह गीता का ज्ञान महाभारत के महायुद्ध के समय भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा अर्जुन को दिया गया था और 'गीता' महाभारत के ही अन्तर्गत एक अंश है। महाभारत में स्वयं गीता का वर्णन करते हुए एक स्थान पर कहा है कि– गीता में 620 श्लोक भगवान् श्रीकृष्ण के कहे हैं, 57 श्लोक अर्जुन ने कहे हैं। 67 श्लोक संजय ने कहे हैं और 1 श्लोक धृतराष्ट्र का कहा है। इस प्रकार 620+57+67+1 कुल 745 श्लोक गीता में होने चाहिए लेकिन प्रचलित पाठ गीता में 45 श्लोक कम हैं। एक ओर तो स्वयं महाभारत में गीता के मूल श्लोकों की संख्या 745 बतायी गई है, लेकिन स्वयं प्रचलित महाभारत में भी गीता के 700 श्लोक ही उपलब्ध हैं।[2]

यहाँ यह भी द्रष्टव्य है कि व्यास ने गीता के विभिन्न श्लोकों का तत्तत् अध्याय में विन्यास तथा 18 अध्यायों का एक विशिष्ट क्रम एक सुविचारित योजना एवं सुनिश्चित प्रणाली के अधीन किया है। वेदों द्वारा मोक्ष के तीन मार्ग प्रतिपादित किये गये हैं– कर्म, भक्ति तथा ज्ञान। इसमें से प्रथम – कर्ममार्ग का विवेचन गीता के आदिम षट्क (1-6 अध्यायों) में है, अगला षट्क (अध्याय 7-12) दूसरे मार्ग-भक्ति का निरूपण करता है और अन्तिम षट्क (अध्याय 13-18 तक) तीसरे मार्ग-ज्ञान का।[3]

समस्त उपनिषदों में ईशावास्योपनिषद् का स्थान सर्वोपरि है वह कामदुग्धा गाय है जिसके उधस् से अनन्त उपनिषदों का जन्म हुआ है। उसकी एक ही धारा से गीताघट भर गया है, वह मन्त्रधारा इस प्रकार है–

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥[4]

---

1. श्रीमद्भगवद्गीता, सामर्पण-भाष्य, स्वामी समर्पणानन्द सरस्वती, पृ.7.
2. गीता का तात्विक विवेचन, आचार्य भास्करानन्द लोहानी, पृ.1.
3. गीता ज्ञान, ब्रह्मदत्त वात्स्याय, पृ.13.
4. यजुर्वेद, 40.2.

www.thearyasamaj.org

इस संसार में मनुष्य कर्म करते हुए ही जीने की इच्छा करे, इसके अतिरिक्त दूसरा कोई मार्ग नहीं। कर्म नर व्यक्ति को लिप्त नहीं कर सकता। यदि किया हुआ कर्म व्यक्ति को लिप्त कर ले, आसक्त कर ले तो व्यक्ति नर नहीं रहता, जन बन जाता है। नर तो है ही वह जो रमता नहीं '**न रमते इति नरः।**' महाभारतकालीन नर व्यक्ति ही स्वजनों में आसक्त हो गया और अपने कर्त्तव्य-कर्म को भूल बैठा। नर को जन बनता देख नारायण को गीता उपदेश देना पड़ा, कहना पड़ा–

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भू मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि॥[5]

इस गीतोपदेश के परिणामस्वरूप अर्जुन को कहना पड़ा –

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाऽच्युत।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव॥[6]

भगवद्गीता के रहस्य को हस्तगत करने के लिए अध्येता को गीताग्रन्थ के आदि और अन्तिम श्लोकों पर विचार करना होगा। गीता का पहला श्लोक धृतराष्ट्र का संजय से प्रश्न है और अन्तिम श्लोक संजय का धृतराष्ट्र के प्रति उत्तर है–

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिमतिर्मम॥[7]

जिस संजय ने विराटनगरी से लौटने के पश्चात् विश्वास दिया था कि ''युद्ध होगा ही नहीं, टल जाएगा, वही संजय कह रहा है कि महाराज, क्या कहूँ, कोई वश नहीं कोई चारा नहीं। क्योंकि जहाँ योगेश्वर कृष्ण हों, जहाँ पार्थ धनुर्धर हों वहीं श्री, विजय, ऐश्वर्य और नीति विराजती है। ऐसी मेरी निश्चित मति है।'' संजय के हाथों धनुर्धर अर्जुन के सिर विजय का सेहरा बंधवाना, श्रीकृष्ण द्वारा किये गये गीतोपदेश का ही परिणाम है।

विश्वभर के आध्यात्मिक ग्रन्थों में गीता की सर्वोत्कृष्टता एवं लोकप्रियता का पता इससे चलता है कि संसार की प्रायः सभी भाषाओं में इसके असंख्य संस्करण अनुवाद के रूप में प्रकाशित हो चुके हैं और हो रहे हैं। सैंकड़ों आचार्यों ने इस पर भाष्य, टीकाएँ तथा निबन्ध लिखे हैं। इनमें शांकर-भाष्य, रामानुज-भाष्य, स्वामी मधुसूदन सरस्वती का गीतागूढ़ार्थ दीपिका, ज्ञानेश्वरी, लोकमान्य तिलक का गीतारहस्य तथा श्री अरविन्द का '**एसेज ऑन दॅ गीता**' उल्लेखनीय हैं। भाष्यों में मूर्धन्य आदिशंकराचार्यकृत शांकरभाष्य है; जो अद्वैतवादी तथा निवृत्तिमार्गी है। संस्कृतभाषा में गीता पर 50 से भी अधिक टीकाएं लिखी गई हैं, जिनमें गीतागूढ़ार्थदीपिका को सर्वोत्तम माना जाता है। इस प्रकार से यह गीता की झांकी है। आइये, हम भी इस झांकी में तनिक झांक कर देखें।

– सहायकाचार्य, संस्कृत राजकीय महाविद्यालय, सिरसा (हरियाणा)।

---

5. गीता, 2.47.
6. गीता, 18.73.
7. गीता, 18.78.

www.thearyasamaj.org

उद्‌बोधन प्रसंग–

भीतर की पुस्तक भी पढ़िए

–डॉ. विजयप्रकाश त्रिपाठी

"यह सत्य है कि तुम अनेकानेक पुस्तकें पढ़ते हो। तुम अधिक विद्वान् और प्रतिष्ठाप्राप्त हो, यह भी ठीक है, लेकिन यदि तुमने भीतर की पुस्तक नहीं पढ़ी, तो तुम अनपढ़ ही हो। अतएव तुम्हें भीतर की पुस्तक अवश्य ही पढ़ना चाहिए।"

स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती अपने समय के श्रेष्ठ विद्वान् थे। उनकी प्रशंसा सुनकर ही कानपुर नगर के विद्वान् प्रधानाचार्य-आचार्य गोरेलाल त्रिपाठी महोदय उनके दर्शन हेतु नगर के राधाकृष्ण मन्दिर (जे. के. मन्दिर) में सपत्नीक पहुँचे। स्वामी जी आनन्दमग्न एक कमरे में तकिया-गिर्दा लगाए विराजमान थे। उनकी मुख-मुद्रा शान्त व प्रसन्नभाव लिए थी। आचार्य गोरेलाल जी ने प्रणाम करते हुए स्वामी जी से पूछा, "आपने वेद-उपनिषद्, गीता व दर्शनशास्त्र का अध्ययन किया है?" स्वामी जी बहुत ज़ोर से हँसे और बोले, "बाबा! पहले भीतर की किताब पढ़ो।"

इस उत्तर में स्पष्टोक्ति और सत्यता है। आचार्य गोरेलाल जी की इच्छा स्वामी जी से आत्मा, परमात्मा और मोक्ष के बारे में शास्त्रार्थ करने की थी, लेकिन उक्त उत्तर ने आचार्य जी की इच्छा पर कुठाराघात कर दिया।

"तुम कुछ पुस्तकें बाहरी आँखों से पढ़ लेने भर से अपने आपको योग्य मान रहे हो कि तुम्हें ब्रह्म और अध्यात्म के बारे में चर्चा करने का अधिकार है। यह तुम्हारी भूल है।"

स्वामी जी आगे बोले, "अध्यात्म चर्चा का सभी को अधिकार है। इसके साथ ही यह भी सत्य है कि अध्यात्म चर्चा का वही अधिकारी हो सकता है, जिसमें प्रपत्ति अर्थात् प्रभुसेवा शरणागति की भावना जाग्रत हो गई है। भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को गीता का उपदेश तब दिया था, जब उसने अपने आपको भगवान् के चरणों में अर्पण कर दिया। **'शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्'**। जो मनुष्य अपनी विद्या अथवा पुस्तक ज्ञान के बल पर अभिमान करता है, वह अध्यात्म से बहुत दूर है। इस अभिमान को निर्मूल करने के लिए भीतर की पुस्तक पढ़ो।"

इस पुस्तक को पढ़ने के लिए तुम्हें बाहर की आँखें बन्द करनी होंगी। साथ ही जाग्रत रहना होगा। यदि बाहर की आँखें बन्द करने पर तुम सो

www.thearyasamaj.org

गए, तो तुम्हारा उद्देश्य पूरा नहीं होगा। भीतर की पुस्तक यदि जागरूकता के साथ तुमने एक बार पढ़ ली तो और सब फीका लगेगा। फिर इस पुस्तक को तुम कभी नहीं छोड़ोगे। इसी पुस्तक को पढ़ते-पढ़ते ईसाहमसीह प्रसन्नता से सूली पर लटक गए। भगवान् बुद्ध ने बोधि-वृक्ष के नीचे बैठे-बैठे छह वर्ष छह क्षण के समान बिताए। ऋषि दयानन्द ने विषपान करके मृत्यु के समय 'ईश्वर तेरी इच्छा पूर्ण हो' का नारा बुलन्द किया था, उसका भी कारण यही था। वृद्ध व क्षीणकाय विनोबा भावे एक गाँव से दूसरे गाँव को घूमते रहे, यह सब भीतर की पुस्तक का चमत्कार था।"

भीतर की यह पुस्तक अनेक जन्मों में पूरी होती है। श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है "**अनेक-जन्मसंसिद्धं ततो याति परां गतिम्।**" उसका भी यही अर्थ है। जो मनुष्य इस मार्ग का जिज्ञासु भर है, वह भी बाहरी पुस्तकों के ढेरों पन्ने पढ़ने वालों से उत्तम है- '**जिज्ञासुरपि योगस्य शब्द-ब्रह्माऽतिवर्तते**'।

जो पुस्तकें तुम्हारे इस कार्य में अर्थात् भीतर की पुस्तक पढ़ने में सहायक हों, उनको भी अपना सहायक समझो। धर्म-दर्शन साहित्य इस आवश्यकता की पूर्ति में प्रेरक व सहायक है। इतना तो निश्चित समझिए, आपकी सफलता इसी में है कि मानवशरीर प्राप्त करके तुम भीतर की पुस्तक पढ़ो। संसार के महापुरुष व सन्त-महात्मा तथा शास्त्र, इसी सत्य के साक्षी हैं।

आचार्य गोरेलाल जी ने स्वामी जी के उद्‌बोधन द्वारा अपने भीतर की पुस्तक पढ़ी और धार्मिक क्षेत्र में पर्याप्त यश अर्जन किया।

-86/323, देवनगर, कानपुर-208003 (उ. प्र.)।

www.thearyasamaj.org

संत श्री शंकरदेव

–श्री वीरेन्द्र नाथ भार्गव

श्री शंकरदेव का जन्म असम राज्य के नौगांव जिले में सन् 1449 में हुआ था। आपके पिता शिवजी के परम भक्त थे और पिता ने पुत्र की प्राप्ति हेतु शिवजी की विशेष पूजा-अर्चना की थी और उनका जन्म होने पर उनका नाम शंकर रख दिया। तत्कालीन भारतीय भूभाग पर विदेशी आक्रमणकारियों के कारण चारों ओर अव्यवस्था-सी फैल गई थी और समाज को सम्बल प्रदान करने के लिए साधु-संतों ने भक्ति का खुल कर प्रचार और प्रसार किया था। संस्कारी श्री शंकर युवावस्था में भारत के विभिन्न तीर्थों की यात्रा पर पैदल निकल पड़े। जगन्नाथपुरी में उन्होंने धर्म-अध्यात्म का विशेष अध्ययन और उपस्थित अनेक संत-महात्माओं के संग का लाभ उठाया। वहाँ भागवतपुराण से विशेष प्रभावित हेकर भक्ति रस से ओत-प्रोत होकर श्री शंकर ने संतों और ब्राह्मणों वाली जीवनचर्या को अपनाया। पारिवारिक और सामाजिक दबावों के आगे न झुकते हुए उन्होंने समाज में भक्ति का प्रचार और संत कबीर की भांति रुढ़िवादिता को दूर करने के लिए प्रयास किये।

श्री शंकर ने तत्कालीन समाज में प्रचलित जीवनपद्धत्ति के अनुकूल ईश्वर की भक्तिहेतु श्रवण और कीर्तन को महत्त्व दिया। श्री शंकर ने असम के दुर्गम, सुदूर और वन क्षेत्रों में बसे गांवों में पैदल जाकर नि:शुल्क और नि:स्वार्थ भाव से कथावाचन किया और सद्वृत्तियों का प्रचार किया। इस कार्य हेतु उन्होंने जनभाषा का प्रयोग किया। असमी और सरल भाषा में भागवतपुराण व अन्य आध्यात्मिक ग्रंथों का अनुवाद करके गीतों के रूप में प्रस्तुत किया जिसे समाज के सभी वर्ग आनन्द-विभोर होकर गा सकते थे। उन्होंने तत्कालीन असम-भाषा में ब्रजभाषा और मैथिलीभाषा के शब्दों का समावेश किया जिससे भगवान् श्रीकृष्ण और भगवान् श्रीराम के पावन चरित्रों को समाज के सम्मुख उजागर किया। उनकी रचनाओं में प्रमुख रचना कीर्तनघोष है। इस पुस्तक में पुराणों और भक्तिपरक प्रसंगों का अनुवाद करके संग्रहीत किया है।

उन्होंने पूर्ण निरपेक्षता का पालन करते हुए समाज के सभी वर्गों के लिए अपनी सरल शैली से भक्ति का मार्ग खोल दिया। उनके ऐसे उदार दृष्टिकोण के कारण उनको रुढ़िवादी पंडितों और तांत्रिक बौद्धों का घोर विरोध सहन करना पड़ा। तत्कालीन असम में शाक्त-परम्परा में मान्य बलि-प्रथा का भी विरोध किया। उनके अनेक

www.thearyasamaj.org

अनुयायियों में से एक मुसलमान दर्जी चांदसांई ने आध्यात्मिक दृष्टि से बहुत प्रसिद्धि पाई थी। श्री शंकरदेव का असम भूभाग को सांस्कृतिक दृष्टि से भारत की मुख्यधारा से जोड़ने में सफलता, धार्मिक सहिष्णुता, मानवप्रेम, सद्भावना और भाषाई एकता में सफल योगदान हुआ। श्रीशंकर के कतिपय संदेश निम्न उल्लिखित हैं–

- ईश्वर भक्ति से ज्ञान मिलता है और ज्ञान से मोक्ष का मार्ग प्रशस्त होता है।
- जप-तप और तीर्थाटन से जुड़ी भ्रामक मान्यताएं और उनमें निहित रुढ़ियों को व्यर्थ मानते हुए कहा –

तप-जप तीरथ करसि
गया काशी वयस गवाई।
जानि योग युगुति मति मोहित
विन भक्ति गति नाई॥

- ईश्वर आराधना को एक शरण नाम देते हुए कहा–

तुमि परमात्मा जग तर ईश एक।
एको वस्तु नाहिके तोमात वितरेक॥

- परमात्मा सभी प्राणियों के हृदय में विराजमान है और ईश्वरप्राप्ति का सरल मार्ग सभी के लिए खुला है।

– 12, महावीर नगर, टोंक रोड, जयपुर-302018

www.thearyasamaj.org

वेदों में राष्ट्रियचिन्तनम्

–डॉ. उमा रानी

ज्ञानार्थक विद्धातु से निष्पन्न वेद शब्द का अर्थ है–ज्ञान। भारत के ही नहीं अपितु विश्व के समस्त मनीषियों के लिए ज्ञानस्रोत, धर्मस्रोत, ज्ञान के भण्डार व भारतीय संस्कृति के मूलाधार वेदों की महिमा अपार है। ऋग्वेद के मन्त्र ज्ञानप्रदायक, यजुर्वेद के उत्तम कर्मों के प्रेरक, सामवेद में ईश्वर–स्मरण और साधना का वर्णन तथा अथर्ववेद में राष्ट्रधर्म, समाज–व्यवस्था, गृहस्थधर्म, अध्यात्मवाद एवं प्रकृतिवर्णन का विस्तृत एवं व्यावहारिक ज्ञान समाहित है।

राष्ट्रप्रेम, देशसेवा और बलिदान–प्रेरक होने के कारण वेद आर्यों के सर्वप्रधान तथा सर्वमान्य धार्मिक ग्रन्थ हैं, अतः आज वेदों का विश्वव्यापी प्रचार है। अपने गौरवशाली अतीत की झाँकी वेदों में स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है, जिससे आज भी हम भारतवासी अपना मस्तक गर्व से उन्नत कर सकते हैं। वेदों में राष्ट्रीयता की उदात्तभावना समाविष्ट है। ऋग्वेद का संज्ञान सूक्त हमें संगठन की अपूर्व शिक्षा प्रदान करता है–

संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संजनाना उपासते॥[1]

अर्थात् हे ईश्वर! आप हमें ऐसी बुद्धि प्रदान करें कि हम सब आपस में मिलकर साथ चलें, एकसमान मीठा बोलें, समान हृदयवाले बनकर स्वराष्ट्र में उत्पन्न धन–धान्य और सम्पत्ति को परस्पर बाँट कर भोगें। हमारी प्रत्येक प्रवृत्ति रागद्वेषरहित और प्रेमवर्धक हो। ऋग्वेद के इन्द्रसूक्त में स्वराष्ट्रार्थ धन–धान्य सम्पन्न पुत्रों से समृद्ध होने की कामना की गई है–

स्वायुधं स्ववसं सुनीथं चतुःसमुद्रं धरुणं रयीणाम्।
चर्कृत्य शस्यं भूरिवारमस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः॥[2]

अर्थात् हे जगदीश्वर! आप हमें अमोघ, उत्तम शास्त्रधारी, अपनी व स्वराष्ट की रक्षार्थ समर्थ, न्याय, धर्म, दया–दाक्षिण्य और सदाचारसहित जनसमूह का नेतृत्व करने वाली, विविध धनों को धारण करके परोपकार करने वाली, प्रशंसनीय, लोकप्रिय, अद्भुत गुणों से ओतप्रोत, प्रत्येक जन व जनसमूह पर कल्याणकारी गुणों को बरसाने वाली और धन–धान्य सम्पन्न सन्तान प्रदान कीजिए। वेद में राष्ट्ररक्षार्थ और उसकी महत्ता में बहुविध ऋचाएँ प्राप्त होती हैं, जिनका उल्लेख निम्नलिखित हैं–

उपसर्प मातरं भूमिम्[3] – अर्थात् मातृभूमि की सेवा करो।

1. ऋग्वेद, 10/ 191/ 2.
2. ऋग्वेद, 10/ 47/ 2.
3. ऋग्वेद, 10/ 18/ 10.

www.thearyasamaj.org

अधोलिखित मन्त्र में मातृभमि को नमन करते हुए कहा गया है– **नमो मात्रे पृथिव्यै नमो मात्रे पृथिव्या।**[4] यहाँ पृथिवी का अर्थ मातृभूमि या स्वदेश है। मातृभूमि को नमस्कार है, मातृभूमि को नमस्कार है। सजगता सहित हमें स्वराष्ट्र में नेतृत्वकरणार्थ निम्न ऋचा उद्घोष करती है– **वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः।**[5] हम स्वदेश में सावधान होकर नेता बनें।

यजुर्वेद में राष्ट्रकल्याण का माङ्गलिक सन्देश राष्ट्रीय प्रार्थना के रूप में उपलब्ध है, जिसमें कहा गया है कि– **आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामा राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायतां**....इत्यादि।[6] अर्थात् हे भगवान्! हमारे राष्ट्र में ब्राह्मण विद्वान् व ब्रह्मतेज-सम्पन्न हों, क्षत्रिय शूर, धनुर्धारी, लक्ष्यप्रहरी और महारथी हों, गायें अत्यधिक दूध देने वाली, भारी बोझ उठाने वाले वृषभ, आशुगामी व दुर्गमपथ विचरणकारी अश्व, सती, सुन्दरी, सगुणवती महिलाएँ रथारूढ़ हो भारत-वीरों की विजय-अगवानी करने वाली, यज्ञ-निरत पुत्र, सभ्य, सुशिक्षित, सरल, सुविचारी, धन्य राष्ट्र के भावी सुदृढ़ सहारा बनने वाले युवक हों। हमारी इच्छानुसार समय-समय पर मेघ जल बरसायें, हमारी ओषधियाँ प्रचुर फलवती व स्वयं पकने वाली हों तथा हमारा योगक्षेम स्वतः सिद्ध हो जाए। मेधावी, क्रान्तदर्शी, शत्रुघातक अग्नि की उपासनार्थ अधोलिखित मन्त्र प्रेरित किया है–

कविमग्निमुप स्तुहि सत्यधर्माणमध्वरे। देवममीवचातनम्।[7] अर्थात् हे स्तोताओ! यज्ञ में सत्यधर्मा, क्रान्तदर्शी, मेधावी, तेजस्वी, नीरोग-कारी व शत्रुहन्ता अग्नि की स्तुति करो। अथर्ववेद का सम्पूर्ण पृथिवीसूक्त मातृभूमि के साथ मानवीय सम्बन्ध, आत्मीयता, संवेदना, समृद्धि, कर्त्तव्य और रक्षादि के संदेश से परिपूर्ण है। स्वार्थरहित स्वदेश सुरक्षा और संवेदना का अनुपम निदर्शन वैदिक साहित्य में मिलता है। हे भूमि! मैं तेरा जो कोई भाग खोदूँ, वह पुनः शीघ्र उग जाए। हे खोजने योग्य! मैं तेरे मर्मस्थल पर चोट न कर पाऊँ और न ही तेरे हृदय को क्षति पहुँचाऊँ।[8] पृथ्वी के प्रति यह संवेदना ही मातृभूमि-सुरक्षा का मार्ग प्रशस्त करती है। अथर्ववेद के इसी सूक्त में भगवान् द्वारा प्रदत्त उपदेश है कि स्वमातृभूमि के प्रति मानव को कैसे भाव रखने चाहिएं। इसमें स्वराष्ट्र को माता मानने व उसके प्रति नमनता का भाव रखने का स्पष्ट शब्दों में उल्लेख है– **सा नो भूमिर्विसृजतां माता पुत्राय मे पयः।**[9] मातृभूमि मुझे पुत्रार्थ दुग्धादि पुष्टिकारक पदार्थ प्रदान कीजिए। **माता भूमिः**

4. यजुर्वेद, 9/22.
5. यजुर्वेद, 9/23.
6. यजुर्वेद, 22/22.
7. सामवेद, 1/1/32.
8. अथर्ववेद, 12/1/35.
9. अथर्ववेद, 12/1/10.

www.thearyasamaj.org

पुत्रोऽहं पृथिव्याः।[10] भूमिः मेरी माता है और मैं उसका पुत्र हूँ।

ऋषियों का यह उद्गार मातृभूमि की रक्षा के अन्तर्भाव में निहित है – **भूमे मातर्निधेहि मा भद्रया सुप्रतिष्ठितम्।**[11] हे मातृभूमि! तुम मुझे सम्यक्रूपेण प्रतिष्ठित करके रखो।

सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः।
अन्यो अन्यमभिहर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या॥[12]

आपस में मिलजुल कर, एकमन होकर, कर्मशील बनो। तुरन्त जन्मे बछड़े को छेड़ने पर गाय जैसे शेरनी बनकर आक्रमणार्थ दौड़ती है, उसी प्रकार तुम सहृदयजनों की विपत्ति में रक्षार्थ तैयार रहो। अतः स्वराष्ट्र की रक्षाहेतु आत्म-बलिदान करने के लिए हम सदैव तत्पर रहें –

उपस्थास्ते अनमीवा अयक्ष्मा
अस्मभ्यं सन्तु पृथिवि प्रसूताः।
दीर्घं न आयुः प्रतिबुध्यमाना वयं
तुभ्यं बलिहृतः स्याम॥[13]

हे मातृभूमि! तेरे सेवक हम नीरोग और राजरोगरहित हों। तुम से उत्पन्न सम्पूर्ण भोग हम प्राप्त करें, ज्ञानी बनकर हम दीर्घायु हों और तुम्हारी रक्षा के लिए आत्मोत्सर्ग करने वाले बने रहें। स्वदेश की सुरक्षार्थ सर्वस्व समर्पण की भावना का यह उत्कृष्ट उदाहरण नितान्त अनुकरण करने योग्य है। मातृभूमि की रक्षा के लिए आत्मबलिदान का यह संदेश समस्त विश्व का मार्गदर्शन करने हेतु पर्याप्त है।

निष्कर्ष –

विश्व वाङ्मय की अमूल्य-निधि, भारतीय संस्कृति के मूलाधार, ज्ञान के महासागर वेदों में राष्ट्र की उपासना व राष्ट्र के प्रति उदात्तभावना का समावेश ही वेदों में राष्ट्रिय चिन्तन है- **संगच्छध्वम् संवदध्वम्** अर्थात् एक साथ चलें और एक स्वर में बोलें। एक साथ चलने व एक स्वर में बोलने से राष्ट्र बनता है, राष्ट्रार्थ एकता की नितान्त आवश्यकता है। लोगों के एकमय होने पर राष्ट्रिय एकता का निर्माण होता है।

हमारी चाल और बोल एक होने पर राष्ट्र आत्मविश्वास से आगे बढ़ता है, अतः हम सब राष्ट्रवासियों को एकजुट होकर राष्ट्र-रक्षा में समर्थ होने हेतु वेदों में वर्णित राष्ट्रिय-चिन्तन को अपनाते हुए वेद की शिक्षाओं को समग्र रूप से ग्रहण करना चाहिए तभी हमारा और राष्ट्र का कल्याण सम्भव है।

–असिस्टैंट प्रोफेसर संस्कृत, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, ऊना (हि. प्र.)

---

10. अथर्ववेद, 12/1/12.
11. अथर्ववेद, 12/1/63.
12. अथर्ववेद, 3/30/1.
13. अथर्ववेद, 12/1/62.

www.thearyasamaj.org

तीज त्यौहार पर्व – मिलजुल मनायें हम

–श्री ठाकुरदास कुल्हारा

प्राणियों में सर्वश्रेष्ठ
ईश्वरीय रचना जो
हम, सभी मानव हैं,
अपने आपको
बुद्धिमान मानते हैं।

अपनी समझ से हम
धर्मों के नामकरण
अलग-अलग करते हैं।

हिन्दु, मुसलमान
सिख या इसाई बन
आपस में भेदभाव
कितने ही रखते हैं।

जबकि सभी धर्मों की
शिक्षायें एक सी हैं।

और फिर यह भी कि
हम, आप, सभी का
मालिक जब एक है,
तो फिर क्योंकर हम
दिलों में अपने
बैरभाव रखते हैं?

जब तब आपस में
लड़ते झगड़ते हैं
अपनी अशांति और
क्लेशों की रचना हम
स्वयं ही करते हैं।
समय पर न चेतकर
बाद में पछताते हैं॥

ध्यान रखें सर्वोपरि
धर्म है 'मानवता'।
स्नेह प्रेम, भाईचारा
सुख-दुख मिल बांटें हम
तीज त्यौहार पर्व
मिलजुल मनावें हम।

–23, गंगानगर गढ़ा, जबलपुर-482003

www.thearyasamaj.org

वेदों में कृषि

–प्रो. देवदत्त भट्टि

वैदिककाल में कृषिकर्म जीविका का महत्त्वपूर्ण साधन था। प्रकृतिप्रसूत अन्न मनुष्य के लिए पुष्कल नहीं था। अतः कृषि द्वारा विभिन्न अन्न उत्पन्न करना आज की तरह वैदिक युग में भी परमावश्यक था।

कृषिकर्म सर्वप्रथम कार्यों में से एक रहा होगा, जो वैदिकयुग के मानव ने सम्पन्न करना सीखा होगा। वेदों में कृषि को पवित्र जीविका स्वीकार किया गया है तथा कृषक को क्षेत्रपति कहा गया है। ऋग्वेद में **''अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित्कृषस्व''**(10.34.13) कह कर द्यूतादि व्यर्थ कार्यों को त्यागकर कृषिकर्म में प्रवृत्त होने का उपदेश दिया गया है। अच्छी फसलें उगाने के लिए **''सुसस्याः कृषीस्कृधि''** (यजु. 4.10) कहा। ऋग्वेद के अनुसार आर्यों को अश्विनी कुमारों ने सर्वप्रथम कृषि की शिक्षा दी थी। (1.117.21; 8.22.6) परन्तु अथर्ववेद में कहा गया है कि पृथीवैन्य ने सर्वप्रथम कृषि द्वारा अन्न उत्पादन का समारम्भ किया था (8.4.11-12)।

अथर्ववेद में अन्यत्र कृषि की महत्ता को बताने के लिए पृथ्वी को गौ की भाँति दुग्ध प्रदान करने वाली कहा है। पृथिवी के सहस्र स्तन हैं, जिनसे वह विभिन्न प्रकार के अन्न रसों से मनुष्यमात्र का पोषण करती है (अथर्व. 12. 1. 45)। यजुर्वेद में परमेश्वर मानव को कृषि के लिए, कृषिजन्य कल्याणकारी पदार्थार्थ, धन के लिए एवं पोषक अन्नादि के लिए आदेश देता है कि वह इन वस्तुओं का कृषि द्वारा उत्पादन करे–

कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा रय्यै त्वा पोषाय त्वा॥
(9. 22)

एवमेव अथर्ववेद में कहा है कि देश का राजा (प्रशासक) कृषि का विस्तार तथा विकास करे। जिससे प्रजा को प्रभूत मात्रा में विविध अन्न उपलब्ध हों। सभी मनुष्य कृषि एवं भिन्न-भिन्न खाद्य पदार्थों का सेवन करते हैं (अतः कृषि का उत्तरोत्तर विकास होना चाहिए)। भिन्न-भिन्न प्रकार की फसलों से लहलहाती धरा हमारा संवर्धन करे–

नो राजा नि कृषिं तनोतु। (3. 12. 4)
ते मनुष्याः कृषिं च सस्यं च उपजीवन्ति।
(8.10.12)
सा नो भूमिर्वर्धयद् वर्धमाना। (12. 1. 13)

ऋग्वेद में स्पष्ट उल्लेख है कि क्षेत्रों में कृषिकर्म होता था और क्षेत्रों के पति किसान को क्षेत्रपति कहा जाता था। ऋग्वेद के बहुत से मन्त्रों में यह तथ्य भी प्रमाणित होता है कि पिता की अचल सम्पत्ति (भूमि) पर पुत्री का प्रभुत्व उसी प्रकार होता था, जिस प्रकार उसका अपने केशों पर अधिकार था। वहाँ अपाला नामक कन्या के अधिकार की बात कही है (8.91.5-6)।

ऋग्वेद में पुष्टिकारक अन्नों की कामना करते हुए कहा है - **रयिं वीरवतीमिषम्** (1.96.11)। वैदिक आर्य जहां युद्धों में विजय की कामना करता है वहां सामाजिक प्रगति के

www.thearyasamaj.org

साथ-साथ कृषि तथा कृषिकर्म के लिए अपेक्षित वृष्टि की भी कामना करता है–

कृषिश्च मे वृष्टिश्च मे जैत्रं च म औद्भिद्यं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्॥ (यजु. 18. 9.)

ऋग्वेद में कृषि का विशेष ज्ञान रखने वाले ऋभुओं का भी उल्लेख है, जो कृषि की उत्पादकता को चार गुणा करने में समर्थ थे। वैदिक आर्य ऋभुओं से प्रार्थना करता है कि 'हे ऋभुओ! तुम जिस विधि से अन्नों को चार गुणा बढ़ा देते हो, उस विधि से भूमि को भी उर्वरा बनाओ (ऋ.1,161.2, 3.10.2)। ऋग्वेद में ही अन्यत्र अच्छी कृषि के लिए ऋभुओं से प्रार्थना की गई है कि ऋभुओ! हमारे क्षेत्रों को उपजाऊ बनाने के लिए नहरें चला दो जिससे अनुर्वरा भूमि में भी सस्य उत्पन्न हो (4.33.7)। उपजाऊ भूमि के लिए अप्नस्वती उर्वरा आदि शब्दों का प्रयोग है और बंजरभूमि के लिए आर्तना, अनुर्वरा तथा ऊषर आदि शब्दों का प्रयोग होता था (ऋ. 1. 127)।

कृषिकर्म में अपेक्षित उपकरणों का प्रचुर मात्रा में उल्लेख वैदिक साहित्य में प्राप्त होता है। भूमि को हलों से जोत कर बीज बोया जाता था। हल के सामान्य नाम लांगल अथवा सीत थे। हल के नुकीले भाग को 'फाल' कहते थे। अन्य प्रधान उपकरणों के नाम स्तेग, युग, तोत्र, लान्तल, अस्त, ईषा इत्यादि थे। हल चलाने के लिए दो, चार, छह:, आठ, दस बारह तक बैलों को लगाया जाता था। बैलों की बढ़ती संख्या के साथ हल भी विशाल एवं भारी होता था। सम्भवत: हलों को चलाने के लिए बैलों के गले पर युग रखे जाते थे।

यद्यपि कृषि के प्रसंग में यव तथा व्रीहि का मुख्य रूप से उल्लेख उपलब्ध होता है, तथापि अन्य अन्नों का भी वर्णन है (यजुर्वेद 18.22)। इसी प्रकार जहां उड़द, तिल, मूंग, चना, प्रियंगु (केशद), अणु (आंव-एक प्रकार का धान्य) श्यामाक (सावा-एक प्रकार का दानेदार धान्य, जैसे जवार, मक्का आदि), नीवार (जंगली धान), गेहूं, मसर आदि का उल्लेख है, वहीं चावल के अनेक प्रकारों तथा जौं का उल्लेख विशेष रूप से प्राप्त होता है। वेदों में विभिन्न प्रकार के धान्य अथवा अन्न के उत्पादन के साथ विविध प्रकार की वनस्पतियों के उत्पादन का विधान भी प्राप्त होता है–

वनस्पतिं वने आस्थापयध्वम्, अर्थात् वनस्पति को वन में स्थापित करें। वनस्पतियों को लेकर वेदों में सैंकड़ों सूक्त हैं, वनस्पतियों में (मुख्यरूप से सोमलता का वर्णन है। इसके अतिरिक्त पिप्पली, अश्वत्थ, वट, जंगिड, गुल्गुलु, अंजन, शंख, चीपुद्रु (चीड़), पुनर्नवा, हरिद्रु, शंखपुष्पी, निर्गुण्डी, गुडूची, हरीतकी, आमलकी, अर्जुन, ब्राह्मी, गोक्षुरु, पिचुमर्द (नीलकण्ठ, निम्ब) मूलयष्टि, शतमूली (शतावर), अश्वगन्धा, वासा, उपामार्ग, सिनीवाली आदि सैकड़ों वनस्पतियों का उल्लेख उपलब्ध होता है।

अथर्ववेद के भूमिसूक्त (12.1) में कृषिकर्म कुशल पांच प्रकार के किसानों द्वारा कृषि का उल्लेख है तथा कृषियोग्य भूमि के पूजन का उल्लेख है (12.1.35)। यत्रतत्र भूमि पर हल चलाकर जब बीज रोपित किया जाता है, तो उस बीज के शीघ्र अंकुरित होने और वृद्धि प्राप्त करने

www.thearyasamaj.org

की कामना की जाती है। कई बार भूमि पर निरन्तर कृषि करने से भूमि की उर्वरता का ह्रास हो जाता है। ऐसी स्थिति में भूमि की उर्वराशक्ति बढ़ाने के लिए गोमूत्र एवं गोबर से बने उर्वरक का प्रयोग करने का विधान है (अथर्व. भूमिसूक्त, 12. 1. 7)। अथर्ववेद में ही कहा गया है कि उत्तम खाद के रूप में गोबर तथा मधुर रस के रूप में गोमूत्र तथा गोदुग्ध प्रदान करने वाली गौएं गोशाला में निवास करें (अथर्व, 3. 14. 3)। ऋग्वेद (1.161.10) में भी इसी प्रकार के उर्वरक का उल्लेख प्राप्त होता है।

भूमि के सिञ्चन के लिए वर्षा के अतिरिक्त कूप एवं "**खनित्रिमा.....आपः**" (7.49.2) नहर आदि के जल का प्रयोग होता था। ऋग्वेद (1.105.17; 1.55.8; 4.17.16; 8.62.6)। खेती के पक जाने पर श्रीणी (7.49.2) एवं दात्र (8.78.10) आदि उपकरणों से फसल को काट कर खल (10. 48. 7) एवं तितउ (10.71.2) द्वारा सँवार कर अन्न को घर लाने का वर्णन ऋग्वेद में प्राप्त होता है। शतपथ ब्राह्मण (3.9.1.8) में अन्न से ऊर्जा की प्राप्ति का उल्लेख है। पक्वान्न को भोज्य कहा जाता था, जिससे अन्न को पका कर खाने की प्रथा प्रमाणित होती है। भोजन के अतिरिक्त सक्तु (ऋक., 10. 71. 2) तथा यवागू (ऋ., 8. 77. 10) आदि खाद्य पदार्थों को यव को भून कर बनाया जाता था। इस प्रकार अनेक प्रकार के भोज्य पदार्थों का वेदों में विस्तृत वर्णन उपलब्ध होता है।

अथर्ववेद (3.17) में कृषि नामक सूक्त है जिसका देवता सीता है। इसमें विभिन्न कृषि उपकरणों कृषिविधि तथा कृषिसिञ्चन आदि का पुष्कल वर्णन है। आज की ही तरह वैदिक युग में भी कृषि एक उत्तम उद्योग एवं आजीविका का मुख्य साधन था। कृषि से ही अन्न, तैल, कपास तथा गुड़-शक्कर आदि खाद्य उत्पन्न होते हैं। कृषि द्वारा ही दुग्धादि पोषक पेय प्राप्त कराये जाते हैं क्योंकि गौ, बकरी, भैंस, भेड़ आदि का दूध प्राप्त करने के लिए चारा तथा चना, कपास के बीज, सरसों के बीज आदि की बनी खल अत्यावश्यक है, जिसे कृषि द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है और दूध की मात्रा एवं दूध के गुणों को बढ़ाया जा सकता है।

अतः मुक्तकण्ठ से कहा जा सकता है कि वेदों में कृषि कर्म एक प्रधान एवं उत्तम व्यवसाय के रूप में जाना जाता था। इसे न केवल वैश्य अपितु अन्य वर्ण भी आजीविका के लिए अपनाते थे। वेदकालीन कृषि एक सफल, समृद्ध तथा सत्कृत व्यवसाय था।

–निदेशक, वैदिक शोधशाला, 95-अग्र नगर, मालेरकोटला-148023 (पंजाब)

www.thearyasamaj.org

वैदिक साहित्य में वृक्षों की प्रासंगिकता

–डॉ. रीना तलवाड़

प्रकृति और मानव का घनिष्ठ सम्बन्ध है। प्रकृति मनुष्य को सांस लेने के लिए स्वच्छ वायु, खाने के लिए भोजन, भवन निर्माण के लिए लकड़ी तथा अन्य सभी आवश्यक वस्तुएँ उपलब्ध करवाती है। पर्यावरण शब्द परि+ आवरण दो शब्दों के संयोग से बना है जिसमें आकाश, पृथ्वी, अग्नि, वायु, जल के साथ-साथ ऋतुएं, पर्वत, नदियाँ, वृक्ष, वनस्पति, जीव-जन्तु आदि समस्त ब्रह्माण्ड समाहित हो जाता है। मनुष्य को पर्यावरण संरक्षण के लिए प्रतिक्षण प्रकृति की रक्षा करनी चाहिए। आज का मानव यह भूल गया है कि वनों की निरंतर कटाई से उपजाऊ भूमि बंजर हो रही है। मौसमचक्र में परिवर्तन आने लगा है तथा देश में कभी अतिवृष्टि तथा कभी सूखा पड़ने लगा है। प्रदूषण-वृद्धि का मूल कारण वनों की कटाई है। मनुष्य जिस वायु में सांस ले रहा है, वह ऑक्सीजन वृक्ष ही उसे देते हैं। मानव के लिए प्रकृति ईश्वर की अनुपम देन है।

वैदिक संस्कृति में वृक्षों की महत्ता सभी कालों में रही है। सभी वृक्षों का आश्रय ग्रहण करके लाभान्वित होते हैं। पुराणों के अनुसार विधिविधानपूर्वक वृक्षोत्सव करने पर मनुष्य की सम्पूर्ण कामनाएं पूर्ण होती हैं।[1] अथर्ववेद में कहा गया है कि '**हे पवित्र करने वाली भूमि! मैं तेरे हृदय को आघात न पहुँचाऊँ।**' स्पष्ट है कि वेदों ने पृथ्वी के अत्यधिक दोहन को स्वीकार नहीं किया। इसलिए प्राकृतिक नियमों का परिपालन करने से प्रकृति के सभी तत्वों का संतुलन स्वयं ही बना रहता है।

वेदों के अनुसार प्रकृति साक्षात् रूप में ईश्वर का काव्य हैं।[2] प्रकृति के नियमों के अनुसार ही स्वजीवन व्यतीत करना चाहिए।[3] आज मानव के स्वार्थ और अज्ञानता ने सम्पूर्ण पर्यावरण को इतना प्रदूषित कर दिया है कि स्वयं उसका अस्तित्व संकटमय हो गया है। पुराणों में पशु-पक्षी एवं वृक्ष-वनस्पतियों के संरक्षण का वर्णन मिलता है। पुराणों में वृक्षारोपण[4] करने वाला मृत्यु के उपरान्त भी अक्षय लोकों को प्राप्त होता है।[5] फलदार वृक्ष मनुष्य को आत्मिक

1. अग्निहोत्र, पृ. 1.
2. देवस्य पश्य काव्यम् 1 सा. वे. 4.43.
3. ऋतस्य पथा प्रेत। यजु. 7.45.
4. शि. पु., 11.17
5. शि. पु., 11.118

www.thearyasamaj.org

सन्तुष्टि प्रदान करते हैं इसलिए वे इहलौकिक और पारलौकिक धर्म के पुत्र कहे जाते हैं।[6] मत्स्यपुराण में वृक्षों के विषय में वर्णन मिलता है कि वृक्षों को बच्चों की तरह परिपुष्ट तथा संस्कार सम्पन्न किया जाना चाहिए। यहाँ तक कि वृक्षों को सुवर्णशलाका के अञ्जन से संस्कृत करें।[7] वराहपुराण के अनुसार वृक्षारोपण करना किसी अन्य दान से कम नहीं अपितु यह भूमिदान और गोदान के समान है।[8] स्कन्दपुराण के नागरखण्ड में वृक्षों को विश्व की प्रमुख रचना कहा गया है।[9]

शिवपुराण के अनुसार विषम जंगलों के पत्रों को तोड़ डालना भी उपपातक के समान है।[10] गरुड़पुराण के अनुसार गुल्म, लता, तृप, वल्ली के त्वक् का हनन करने वाला मानव जड़ और वृक्ष की योनियों में भटकता रहता है।[11]

वैदिक ऋषि भूमि को माता का स्थान देते हैं। अथर्ववेद के अनुसार भूमि माता है और मैं इसका पुत्र हूँ। अतः हमें पृथ्वी को प्रदूषण रहित कर माता के समान इसकी रक्षा करनी होगी। हमारी पृथ्वी जंगलों की वनस्पति से सांस ग्रहण करती है। एक दिन में वट वृक्ष और पीपल का वृक्ष 1712 किलोग्राम प्राणवायु यानि ऑक्सीजन का निर्माण करता है तथा 2252 किलोग्राम कार्बनडाई-ऑक्साईड यानि दूषित वायु का शोषण करता है। इस क्रिया से वृक्ष स्वयं जीवित रहते हैं तथा प्राणीमात्र को जीवित रहने का अवसर प्रदान करते हैं। यजुर्वेद में ही प्रार्थना की गई है – हे राजन्! ईश्वरीय सृष्टि में जहां वन हैं, उस भाग की हानि करने वालों या वन को जलाने वालों को दूर कीजिए। यजुर्वेद में ही वनों के पति को नमस्ते, वृक्षों के पति को नमस्ते, औषधियों के पति को नमस्ते। इस मन्त्र से वृक्षों और औषधियों के प्रति आदर-सत्कार की भावना जताई गई है। वनस्पति-औषधि, फल-फूल तथा अन्नादि को बनाने में भी अहम भूमिका निभाती हैं और वनस्पति को बढ़ाने में सूर्य तथा चन्द्रमा की उष्ण तथा शीतल किरणें अति सहयोग करती हैं।

वेद में ऋषियों ने पेड़-पौधों और पशुओं की रक्षा करने की शिक्षा दी है तथा उनको हानि न पहुँचाने का भी उल्लेख प्राप्त होता है। वृक्षों के संरक्षण में कहा गया है कि वृक्षों को कुल्हाड़ी से मत काटो। वेद-पुराणादि शास्त्रों ने पीपल, वट, तुलसी आदि कई पेड़-पौधों को पूजनीय बताया है और उनके काटने का निषेध किया है। वट, पीपल आदि देववृक्ष हैं। वटवृक्ष के मूल में ब्रह्म,

6. शि. पु., 11.21
7. मत्स्यपु., 59.3.
8. वरा. पु. 170.35.
9. स्कन्द पु. ना. खण्ड, 247.21.
10. शिव पु., 11.9.
11. गरुड़पुराण उत्तरार्द्ध खण्ड, श. 32.

www.thearyasamaj.org

मध्य में जनार्दन तथा अग्रभाग में भगवान् शिव प्रतिष्ठित रहते हैं। धर्मसूत्र में कहा गया है कि 10 कुँओं के बराबर एक बावड़ी, 10 बावड़ियों के बराबर एक तालाब, 10 तालाब के बराबर एक पुत्र एवं 10 पुत्रों के बराबर एक वृक्ष है।[12]

पुराणों में ऐसा उल्लेख किया गया है कि जो व्यक्ति पीपल अथवा नीम या बरगद का एक, इमली के दस, कपित्थ अथवा बिल्व एवं आंवले के तीन और आम के पांच पेड़ लगाता है, वह कभी नरक नहीं जाता।[13] इन सबके पीछे वास्तविकता यह है कि ये वृक्ष दीर्घायु, औषधीय तथा प्रदूषण नियन्त्रण के गुणों से भरपूर होने के साथ-साथ पर्यावरण के संरक्षक वृक्ष हैं।

अतः प्राचीनकाल से ही वन मनुष्य के सहयोगी बने रहे हैं। आदिकाल का मानव जब जंगली अवस्था में रहता था तो वन ही उसका घर था। पेड़ों की छाल तथा पत्ते ही उसके वस्त्र थे तथा पेड़ के फल, कंद-मूल से वह अपना पेट भरता था। अतः वन तथा मनुष्य का बहुत पुराना सम्बन्ध है। अतः इस सम्बन्ध को और अधिक पल्लवित-पुष्पित करने हेतु हमें अधिकाधिक वृक्षों को लगाना है।

–संस्कृत विभागाध्यक्षा, शान्ति देवी आर्य महिला महाविद्यालय, दीनानगर।

---

12. विष्णुधर्मसूत्र, 4.4.

13. भविष्यपुराण।

www.thearyasamaj.org

सन्त पलटू साहिब–एक परिचय

–डॉ. महेश सिंह यादव

निर्गुण सन्त कवियों में पलटू साहिब का नाम आदर के साथ लिया जाता है। पलटू साहिब उच्च कोटि के महात्मा तथा साधु स्वभाव के थे। इनका हृदय उदार था, ये युग की प्रतिमूर्ति थे। इनकी कीर्ति आज भी फैजाबाद और अयोध्या में दूर-दूर तक फैली हुई है। इनके विषय में अधिक जानकारी प्राप्त नहीं हो पायी है, फिर भी कुछ प्राप्त हुआ है।

"पलटू साहिब ने नगपुर जलालपुर गाँव में एक काँदू बनिया के घर जन्म लिया, जिसे 'भजनावली' में नंगाजलालपुर के नाम से लिखा गया है। यह गाँव फैजाबाद के जिले में आजमगढ़ की पश्चिम सीमा से लगा हुआ है। यहीं उनके पुरोहित गोविन्दजी महाराज रहते थे और दोनों ने बाबा जानकीदास नामक साधु से उपदेश लिया था। पर उनको शान्ति नहीं मिली, इसलिए सारवस्तु की खोज में दोनों निकले। गोविन्दजी जगन्नाथपुरी को जाते थे कि रास्ते में भीखा साहिब के दर्शन मिले, जिनसे गुप्त भेद प्राप्त हुआ। तब गोविन्दजी पलटू साहिब के पास लौटे और पलटू साहिब ने इनसे सारवस्तु का उपदेश लेकर उन्हें गुरु धारण किया।"[1] पलटू साहिब के जन्म के विषय में यह दोहा प्रसिद्ध है–

नंगाजलालपुर जन्म भयो है,
बसे अवध के खोर।
कहैं पलटूदास हो, भयो जक्त में सोर।
चार वरन को मेटि के, भक्ति चलाई मूल।
गुरु गोविन्द के बाग में, पलटू फूले फूल।
सहर जलालपुर मूड़ मूड़ाया,
अवध तुड़ा करधनियाँ।
सहज करैं व्यापार घट में,
पलटू निर्गुन बनिया।[2]

इसमें पलटू साहिब का जन्म नंगाजलालपुर में तथा नंगाजलालपुर को आजमगढ़ के पास बतलाया गया है। आज आजमगढ़ के पास नंगाजलालपुर नहीं है, पर जलालपुर अवश्य है, जो जौनपुर जिले में पड़ता है। हो सकता है उस जलालपुर को ही कभी नंगाजलालपुर कहा जाता हो। जो भी हो, सन्तों की जन्मभूमि तो विवाद के घेरे में रहती ही है; लेकिन पलटू साहिब का व्यक्तित्व बहुत ही महान् रहा। उनका स्तर उच्च रहा। अयोध्या की नगरी में आज भी पलटू साहिब का काफी सम्मान है, अयोध्या में आज भी पलटू साहिब का अखाड़ा मौजूद है। जहाँ उनके अनुयायी आज भी रहते हैं, जो पलटू साहिब की ही मूर्ति रखकर उनकी पूजा करते हैं और अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

पलटू साहिब की दृष्टि काफी व्यापक रही। उन्होंने हर विषय पर विचार किया। अन्य सन्तों की तरह उन्होंने भी संसार की असारता को भी स्पष्ट किया है। उन्होंने गुरु की महत्ता को भी

1. पलटू साहिब की बानी : भाग तीन प्रस्तावना, वेलवीडियर प्रिन्टिग वर्क्स, इलाहाबाद।
2. पलटू प्रसादः भजनावली

www.thearyasamaj.org

स्वीकार करते हुए गुरु को केवट के रूप में स्वीकार किया है–

पलटू सतगुरू शब्द की, तनिक न करै विचार।
नाव मिली केवल नहीं, कैसे उतरै पार॥[3]

उनकी दृष्टि में गुरु ही वह जहाज है, जो भवसागर को पार कराता है–

पलटू जप-तप के किये,सरै न एकौ काज
भव सागर के तरन को,सद्‌गुरू नाम जहाज॥[4]

उनको जन्म-मरण का भय कदापि न था, न वे किसी से मित्रता चाहते थे, न शत्रुता –

ना जीने की खुशी है, पलटू मुए न सोच।
ना काहू से दुष्मनी, ना काहू से रोच॥[5]

उन्होंने कई एक नीतिपरक दोहे भी कहे हैं। उनके मत में रहन-सहन से साधु की परख करनी चाहिए, रात में चोर की परख करनी चाहिए, आग पर तपाकर सोने की परख करनी चाहिए और बात-चीत करके झूठे की परख करनी चाहिए।[6] उन्होंने अच्छी संगति पर बहुत बल देते हुए लिखा कि–

संगति ऐसी कीजिए, जहवाँ उपजै ज्ञान।
पलटू तहाँ न बैठिए, घर की होय जियान॥[7]

उनकी दृष्टि में सदैव राम का भजन करना चाहिए, राम से ही मनुष्य का कल्याण होता है। इस विषय में वे लिखते हैं–

सुख के सागर राम हैं, दुख के भंजनहार।
राम चरन तजिये नहीं, भजिये बारम्बार॥[8]

उनकी दृष्टि में प्रेम का बख्तर पहनना चाहिए। गुरुज्ञान रूपी घोड़ा लेना चाहिए और सुरति रूपी कमान लेकर माया को जीत लेना चाहिए अर्थात् माया को भगाने के लिए गुरु ज्ञान परमावश्यक है।[9] उन्होंने अपने दोहों में स्पष्ट किया है कि मजीठ के रंग की तरह गहरा प्रेम करना चाहिए, जैसे कपड़े के फट जाने पर भी मजीठे का रंग फीका नहीं पड़ता है, वैसे ही प्रेम इतना गहरा होना चाहिए कि शरीर के नष्ट होने पर भी उसका रंग ज्यों का त्यों रहे।[10] पलटू साहिब की दृष्टि में कोई किसी का कुछ नहीं बिगाड़ सकता। उनका कहना था कि संसार के लोग जितने ही नाराज होते हैं, उतना ही मेरा कल्याण होता है। यदि भगवान् की शरण में हैं, तो कोई भी बाल बाँका नहीं कर सकता है। अतः प्राणीमात्र को भगवान् पर पूर्ण विश्वास होना चाहिए।[11] सन्त की महिमा का वर्णन करते हुए वे लिखते हैं कि सन्त भाग्य को भी बदल देता है, देर इसलिए लगती है कि व्यक्ति के हृदय में विश्वास की कमी होती है–

पलटू लिखा नसीब का, सन्त देत है फेर।
साच नहीं दिल आपना, तासे लागै देर॥[12]

पलटू साहिब ने सबको साधु का बालक समझा है और सबको क्रोध से दूर रहने का उपदेश दिया है, उन्होंने प्रेम की वाणी बोलने का उपदेश दिया है, प्रेम की वाणी से, मधुर वाणी से एवं सद् व्यवहार से सभी लोग प्रसन्न रहते हैं। अतः व्यक्ति

---

3. पलटू साहिब की बानी भाग तीन, गुरुदेव, साखी-6, पृष्ठ-68
4. वही : साखी-8.
5. वही : विनय, साखी-46.
6. वही : साध, साखी-61.
7. वही : सत्संग-साखी-82.
8. वही : साखी।
9. वही : सूरमा: साखी-44.
10. वही : प्रेम : साखी-24.
11. वही : विश्वास, साखी-2, 3.
12. वही : विश्वास, साखी-36.

www.thearyasamaj.org

को मीठी वाणी बोलनी चाहिए, जिससे सभी उसकी बात को मानें।[13] पलटू साहिब ने सम्पूर्ण संसार को स्वप्न माना है, उनकी दृष्टि में संसार के सारे सम्बन्ध स्वप्न हैं, एक दिन सबसे सम्बन्ध छूट जायेगा और यदि राम का भजन नहीं किया तो काल के गाल में जाना पड़ेगा। इस विषय में वे लिखते हैं कि–

देह और गेह परिवार को देखिकै
माया के जोर में फिरै भूला।
जानता सदा दिन ऐसे हो जायँगे,
सुन्दरी संग सुखलाल झूला।
चारि जून खात है बैठि के खुसी से,
बहुत गुटाई के भया थूला।
सेजबँद बाँधि कै पान को चाभते,
रैन-दिन करत हैं दूध-कूला।
दास पलटू कहैं नाम को याद करू,
ख्वाब की लहरि में काह भूला॥[14]

वे सत्संग को सर्वोपरि मानते थे। अच्छे सन्तों का संग व्यक्ति को सभी प्रकार से सुख पहुँचाता है तथा कल्याण के रास्ते पर ले जाता है। उनका मानना था कि संसार में बिना सत्संग के भगवान् की कथा नहीं मिलती और बिना भगवान् की कथा के मोह नहीं भागता, बिना मोह भागे मुक्ति नहीं मिलती, बिना मुक्ति के अनुराग नहीं मिलता, बिना अनुराग के भक्ति नहीं मिलती और बिना भक्ति के प्रेम हृदय में नहीं पैदा होता है। वे लिखते हैं–

बिना सत्संग ना कथा हरि नाम की,
बिना हरिनाम ना मोह भागै।
मोह भागे विनु मुक्ति ना मिलैगी,
मुक्ति विनु नाहीं अनुराग लागै।
बिना अनुराग से भक्ति न मिलैगी,
भक्ति बिनु प्रेम उर नहिं जागै।
प्रेम बिनु नाम नाम ना, नाम बिनु संत ना,
पलटू सत्संग वरदान माँगे॥[15]

संक्षेप से लिखा जा सकता है कि पलटू साहिब निर्गुण काव्यधारा के शिरोमणि थे, उन्होंने संसार में केवलमात्र भगवान् राम की ही सत्ता स्वीकार की, जो गुरु की कृपा से प्राप्त होती है। गुरु भवसागर पार करने का जहाज है। गुरु की वाणी पर विश्वास करना चाहिए, संसार नश्वर है, यह शरीर भी नश्वर है, शरीर की जवानी भी नश्वर है। केवल परमात्मा सत्य है, सम्पूर्ण संसार इसी की फैलाई हुई माया है। उन्होंने इस माया से दूर रहने का संदेश दिया है। उन्होंने सम्पूर्ण मानव समाज को सुखमय देखने की कोशिश की है जो इस युग की सबसे बड़ी प्रासंगिकता है। **'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः॥'** जैसी वैदिक-भावना के परम पोषक थे। अतः यही उनका उपदेश तथा गुरुभक्तों एवं अपने अनुयायियों के लिए वे वसुधैव कुटुम्बकम् को केवल मानते ही नहीं थे अपितु उसके अनुरूप आचरण भी करते थे। उनका एकमात्र उद्देश्य था कि प्रत्येक वस्तु सत्यं शिवं और सुन्दरं हो। क्योंकि परम पिता परमात्मा का स्वरूप भी **'सत्यं शिवं सुन्दरम्'** है। अतः सम्पूर्ण जगत् सत्यं शिवं तथा सुन्दरं के कारण परमात्मरूप ही है।

–प्रवक्ता : हिन्दी, आर. जी. एन. पी. कॉलेज, राजा का ताजपुर, बिजनौर।

13. पलटू साहिब की बानी : भाग दो, वेलवीडियर प्रिन्टिग वर्क्स, इलाहाबाद।
14. वही : वितावनी-25, पृष्ठ-9.
15. वही : वितावनी-21, पृष्ठ-8.

www.thearyasamaj.org

पर्यावरण संरक्षण सम्बन्धी पौराणिक एवं आधुनिक प्रयास

–सुश्री मोनिका भाटी

कुछ समय से पर्यावरण के सन्तुलन बिगड़ने से जो नाना प्रकार की समस्याएं समाज में देखी जा रही हैं उससे वर्तमान समय में ही नहीं अपितु प्राचीन ऋषियों की दृष्टि में भी उसके प्रति जो सावधानता थी वह प्राचीन शास्त्रों के अवलोकन से स्पष्ट है। वस्तुतः प्रकृति के प्रति जिन विचारगत एवं व्यवहारगत सुधारों की आवश्यकता है, आज की सर्वोच्च संस्थाएँ चिन्तातुर होकर उन पर ध्यान देने लगी है। पर्यावरण के अन्तर्गत वन एवं वनस्पतियों का महत्त्व प्राचीनकाल से ही स्वीकार्य रहा है। वन पर्यावरण सन्तुलन में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते हैं, अतः पौराणिक साहित्य में वनों को अत्यधिक महिमामण्डित किया गया है।

वृक्षारोपण की दृष्टि से–

वृक्षारोपण के माध्यम से पर्यावरण चिन्तन की प्राचीन वैज्ञानिक एवं सारगर्भित अवधारणा अग्निपुराण की ''वृक्षप्रतिष्ठा विधि'' के अन्तर्गत समाहित है। पर्यावरण के प्रति सर्वदा जागरूक रहने की दृष्टि से प्राचीन समय में, जहाँ अनेक वस्तुओं को मुक्ति देने वाला माना गया, वहीं यहाँ वृक्षारोपण को भुक्ति एवं मुक्ति प्रदान करने वाला माना गया है।[1]

वर्तमान समय में भी अधिक पेड़ लगाकर कार्बनडाईऑक्साईड की मात्रा को नियन्त्रित करके पर्यावरण को सन्तुलित किया जाये–इस उद्देश्य से वैज्ञानिकों का ''प्रथम शिखर सम्मेलन'' 5 जनू, 1972 में स्टाक होम स्वीडन में हुआ था। जिसमें पर्यावरण प्रदूषण पर विचार किया गया था। 20 वर्ष पश्चात् 1992 में द्वितीय शिखर सम्मेलन ''रियो डी जेनेरो'' ब्राजील में हुआ। इसी के साथ 1979 में वृहद् वृक्षारोपण अभियान भी प्रारम्भ हुआ।[2] इसके अतिरिक्त ''बृहद् वृक्षारोपण अभियान 1975''[3] के माध्यम से प्रतिवर्ष अनेकों वृक्षों का रोपण किया जाता है।

पाठक देखेंगे कि प्राचीन ऋषियों का भी इस दिशा में निरन्तर प्रयत्न रहा है। वे भी सर्वदा इस दिशा में जागरूक रहते थे। अतः पुराणों में भी वन एवं वृक्ष संरक्षण की दिशा में वृक्ष महोत्सव[4] अथवा वृक्ष प्रतिष्ठा[5] विधियों के आयोजन का उल्लेख तत्कालीन अथक् प्रयासों की ओर इंगित करता है। वृक्षों के संरक्षण एवं अभिवृद्धि के लिए मत्स्यपुराण में वर्णन है कि वेदमन्त्रों के उच्चारण के साथ वृक्षों का आरोपण एवं अभिषेक करना चाहिए–

1. प्रतिष्ठा पादपानां च वक्ष्येऽहं भुक्तिमुक्तिदाम्।
   सर्वौषध्योदकैर्लिप्तान्पिष्टातकविभूषितान्॥
   – अ. पु. 70/1.
2. विश्वज्योति, साधु आश्रम, होशियारपुर।
3. म. पु. 59/12.
4. www.gaytriparivar.com
5. अ. पु. 69/1-15.

www.thearyasamaj.org

ऋग्यजुःसाममन्त्रैश्च वारुणैरभितस्तथा।
तैरेव कुम्भैः स्नपनं कुर्याद् ब्राह्मणपुंगवः॥[6]

इसी दिशा में आज भी ''गायत्री परिवार' द्वारा ''तरूपुत्र-वृक्ष-मित्र-अभियान'' के अन्तर्गत वृक्षारोपण के समय वैदिक मन्त्रों का उच्चारण किया जाता है।

खाद की दृष्टि से –

अग्निपुराण के अनुसार अगर भेड़ एवं बकरी की लेंडी अर्थात् गोबर के चूर्ण को वृक्षों की जड़ों में डाला जाये तो वृक्षों में किसी प्रकार का कोई रोग उत्पन्न नहीं होगा एवं वृक्ष सदैव पुष्पों एवं फलों से समृद्ध रहेंगे– **अजाविकाजश-कृच्चूर्णम्।**[7]

आज भी अनेक फसल संरक्षण संस्थान एवं वन संरक्षण संस्थान प्राचीन पद्धत्ति पर आधारित खादों का प्रयोग कर रहे हैं एवं उनके सुपरिणामों से लाभान्वित हो रहे हैं। यथा – कहा गया है कि एक साल की आयु वाले पौधों को लगभग 12-15 किलोग्राम गोबर की खाद, 4 साल की आयु वाले पौधे को 15 किलोग्राम खाद एवं 10 साल की आयु वाले पौधे को 60 किलोग्राम गोबर का खाद देना उपयुक्त होता है। इस खाद के उपयोग से वृक्ष हरे-भरे एवं समृद्ध रहते हैं।[8]

कृत्रिम उपवन की दृष्टि से –

पुराणों में वनों के साथ-साथ उपवनों का उल्लेख भी मिलता है। इन उपवनों में विविध प्रकार के वृक्ष, लताएँ एवं वनस्पति-औषधियों का आरोपण किया जाता था। साथ ही इनमें विभिन्न प्रकार के पशु-पक्षी भी विद्यमान रहते थे। इन उपवनों का उद्देश्य वृक्षों-वनस्पतियों एवं जीव-जन्तुओं को आश्रय प्रदान करना था। ये उपवन पौराणिक काल में कृत्रिम वन के नाम से अभिहित थे–

आरामः स्यादुपवनं कृत्रिमं वनमेव यत्।[9]

वर्तमान समय में भी विश्वबन्धुत्व, मैत्री एवं सहअस्तित्व की रक्षा हेतु जयपुर में एक अद्भुत ''वृक्ष संगम स्थल'' या ''विश्व वानिकी वन उद्यान'' बनाया गया है। 154 हैक्टेयर भू-भाग पर सन् 1986 से ही इसे विकसित किया जा रहा है। इसकी विशिष्टता यह है कि इस उद्यान में अब तक लगभग 113 देशों के राजनयिकों एवं प्रतिनिधियों ने अपने देश का प्रतिनिधित्व करने वाले वृक्षों को यहाँ लाकर रोपित किया। 29 मार्च, 1986 से इस उद्यान में विश्व वानिकी दिवस पर विभिन्न देशों से पौधे मंगवा कर लगाये जाते हैं।

कर्त्तव्य की दृष्टि से–

वन संरक्षण में वनों के सभी अंग अपना-अपना योगदान देते हैं। पर्यावरणीय कारकों के सतत सक्रिय आदान-प्रदान के क्रम से वनसन्तुलन बना रहता है। विवेकशील प्राणी के रूप में मानव से वनसंरक्षण की अपेक्षा होना नितान्त स्वाभाविक है। इस तथ्य की पुष्टि पुराणों में वर्णित वन एवं औषधि संरक्षण में राजाओं के लिए निर्धारित कर्त्तव्यों के अन्तर्गत दृष्टिगोचर होती है। यथा-मत्स्यपुराण में वनस्पतियों एवं

---

6. अ. पु. 70/1.
7. अ. पु. 282/11.
8. www.krashi.com.
9. अ. पु. 363/12.

www.thearyasamaj.org

औषधियों के संरक्षण हेतु राजा को निर्देश देते हुए कहा गया है– शण, सर्ज, भूर्ज, जतु एवं लाक्षा इत्यादि औषधियों को राजा द्वारा संरक्षण करते हुए अपने दुर्ग में संचय करना चाहिए, यह उनका कर्त्तव्य है।[10]

तत्कालीन विशुद्ध भावना का अनुगमन करने वाली आधुनिक पर्यावरण संरक्षण दृष्टि हमें बयालीसवें संविधान संशोधन में अनुच्छेद 51–क के रूप में "मूल कर्त्तव्य में व्यवस्थित हुई परिलक्षित होती है। जो प्रावधान करता है कि भारत के प्रत्येक नागरिक का कर्त्तव्य होगा कि वह (छ) प्राकृतिक पर्यावरण की जिसके अन्तर्गत वन, झील, नदी और वन्य–जीव है, रक्षा करे और उनका संवर्धन करे तथा प्राणिमात्र के प्रति दयाभाव रखे।"[11] यह संवैधानिक प्रावधान जहाँ एक ओर पर्यावरण के संरक्षण एवं संवर्धन हेतु राज्य को निर्देश देते हैं, तो दूसरी ओर यह प्रत्येक नागरिक को पर्यावरण संरक्षण में सहयोग देने का कर्त्तव्य भी स्मरण कराते हैं।

धार्मिक दृष्टि से–

वनों पर मानव की निर्भरता को पहचान कर ही क्रान्तिद्रष्टा मनीषियों ने प्राकृतिक शक्तियों को प्रसन्न एवं सन्तुष्ट रखने के लिए प्रकृति उपासना का विधान किया और ऋचाओं में मुक्त भाव से प्रकृति का यशोगान करते हुए उससे सुख, वैभव, सन्तति एवं समृद्धि की याचना की है। अपनी सर्वदान क्षमता के कारण देवत्व के पद पर प्रतिष्ठित प्रकृति से मानव आवश्यकताओं की पूर्ति के सम्पूर्ण संसाधन ग्रहण करता है। यही कारण है कि प्राचीन ऋषियों में तत्–तत् वृक्षों में देवतावास की परिकल्पना करके उनके प्रति पूज्यभाव पैदा कर मनुष्य को उसके प्रति आदर–भाव पैदा करने के लिए वृक्षों में तथा वनस्पतियों में ईश्वरभाव की उद्भावना की। ऋषि कहता है कि वृक्ष, वनस्पति सभी में ईश्वर का वास है–

वृक्ष के मूल में ब्रह्मा निवास करते हैं, जो अत्यन्त सूक्ष्म हैं। वृक्ष की शाखाओं में भगवान् शिव का निवास है, त्वचा में विष्णु एवं वृक्ष की पत्तियों में सर्वदेवताओं का निवास होता है अतः वृक्षाधिपति परमब्रह्म को हमारा नमन है।[12]

वस्तुतः आधुनिक वैज्ञानिक भी अणु–परमाणु संघातस्वरूपा प्रकृति में परमतत्त्व को स्वीकार करते हैं। (General Principles, The World Charter of Nature, Adopted by General Assembly of United Nation on October, 1982)[13]

यज्ञ की दृष्टि से–

मनीषियों के कथनानुसार प्रकृति के दुष्परिणाम अर्थात् दण्ड से बचने का एक ही उपाय है कि वृक्ष–वनस्पतियों के प्रति जो धन्यवाद और विनम्र पुरुषार्थ का भाव है, उसे चरितार्थ किया जाये। इसी का दूसरा नाम वृक्षयज्ञ है। अग्निपुराण में एक स्थान पर कहा गया है कि

10. म. पु. 217/ 39.
11. पर्यावरण मीडिया एवं कानून, रमेश जैन, सबलाइम पब्लिशर्स, जयपुर, 2005.
12. म. पु.
13. प्राचीन भारत में पर्यावरण चिन्तन, डॉ. वन्दना रस्तौगी पब्लिकेशन स्कीम, जयपुर, 2000.

www.thearyasamaj.org

भूमि को तोड़ने से, वनस्पतियों को काटने से, क्षुद्र कीड़ों एवं जीवों की हत्या होने से जो अपवित्रता वातावरण में विद्यमान हो जाती है, उसकी पवित्रता हेतु यज्ञ करना चाहिए।[14]

इस पौराणिक विचार को चरितार्थ करने वाली आज से लगभग 25 वर्ष पूर्व की वह याज्ञिक घटना है जिससे सिद्ध होता है कि यज्ञ जीवनदाता है। यह न केवल वन सम्पदारूपी सर्वोत्तम संसाधन को सुरक्षित ही करता है अपितु संवर्धित भी करता है। इस सन्दर्भ के प्रत्यक्षद्रष्टा प्रो. भ्रमरलाल जोशी के अनुसार – "पं. मदनमोहन मालवीय ने बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के स्थापना समारोह में 51 दिवसीय यज्ञ किया। यज्ञ के धुएँ से आस-पास की प्रकृति को, वातावरण और पर्यावरण को तो शुद्धि प्राप्त हुई ही, पर एक प्रत्यक्ष आश्चर्य यह हुआ कि बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय परिसर के सैंकड़ों वृक्ष जो ठूंठ बन गये थे, उनमें कौंपलें आ गईं। वे पुनः जीवन्त होकर पल्लवित हो उठे। अतः आधुनिक समाज यह स्वतः ही कह उठता है कि यज्ञ पर्यावरण के रक्षक ही नहीं संवर्धक भी है।

सांस्कृतिक दृष्टि से –

पुराणों में जिस प्रकार मानव-सन्तति को संस्कार-सम्पन्न कर संस्कारित करने का विधान सुप्रचलित है उसी प्रकार वृक्षादि को सुसंस्कृत करने का निर्देश दिया गया है कि– औषधियों के जल से वृक्षों को सींच कर, सुगन्धित द्रव्यों से पूजकर मालाओं से अलंकृत कर वस्त्राच्छादन करना पुराणकालीन वृक्षसंरक्षणरूपी उदात्त भावना का परिचायक है।[15] इसी भांति वृक्षों का कर्णवेधन कर एवं उनका अंजन करके भी वृक्षों को संरक्षित करने की परम्परा तत्कालीन अत्यन्त पावन पर्यावरण संस्कृति का संसूचक है। वहाँ कहा गया है कि–

सूच्या सौवर्णया कार्यं सर्वेषां कर्णवेधनम्।
अञ्जनं चापि दातव्यं तद्वद्हेमशलाकया॥[16]

राजस्थान में ही अजमेर के समीप नारेली तीर्थ में आर. ए. सी. जवानों की पत्नियों ने पर्यावरण-सुरक्षा हेतु अनूठी पहल करते हुए करीब डेढ़ सौ पेड़-पौधों की कलाई पर रक्षासूत्र बांधे। इस अवसर पर उन्होंने प्रण किया कि रेशम की यह डोर हमेशा-हमेशा के लिए उनकी सुरक्षा कवच का धर्म निभायेगी। पेड़ों की आरती भी उसी अंदाज में उतारी गई, जिस प्रकार बहनें अपने भाई की करती हैं। सम्भवतः प्राचीन संस्कार ही आज वृक्षसंरक्षण एवं उनके पूजन की भावना को जागृत करते हैं।[17]

आत्मिक दृष्टि से–

पुराणों में वृक्षों को आलम्बन, उद्दीपन और उपमान के रूप में महत्वपूर्ण स्थान ही नहीं अपार ममता भी मिली है। पुराणों में वृक्षों को पुत्र की संज्ञा प्रदान कर उन्हें संरक्षित रखने की अनुभूति मिलती है।[18]

आधुनिक समाज में भी वृक्षों के प्रति अत्यधिक आत्मीयता की भावनाएँ प्रतीत होती

---

14. अ. पु. 152/ 3.
15. संस्कृति के सन्दर्भ।
16. म. पु. 59/ 1-19.
17. म. पु. 59/ 6.
18. पर्यावरण संरक्षण हमारा नैतिक दायित्व, सुबुद्धि गोस्वामी।

www.thearyasamaj.org

है। एक गढ़वाली कहावत में कहा गया है– **''अपना बेटा और पराया पेड़ बराबर होता है''** इससे स्पष्ट है कि वृक्ष अगर पराया भी हो तो भी उसके प्रति आत्मीयता रखनी चाहिए। वृक्षों के काटे जाने पर उनसे लिपटकर प्राण न्यौछावर करने की घटनाएँ भी हमारे समाज में उपलब्ध हैं। आज का **''चिपको आन्दोलन''**[19] वृक्ष-संरक्षण के सम्बन्ध में आत्मीय भावों की सुस्पष्ट प्रतीति कराता है। 10 वर्ष पश्चात् उभर कर सामने आने वाला **'एप्पिको आन्दोलन'**[20] भी **'चिपको आन्दोलन'** का ही पर्याय है।

दण्ड की दृष्टि से –

वनों के सहज स्वभाव से सुपरिचित तपस्वी जान सकता है कि वनों के विशुद्धेतर स्वरूप के लिए मानव के अविवेकपूर्ण कृत्य ही उत्तरदायी हैं। मानव को वनों से विमुख कर देने का कठोर विधान वनों से अधिक मानव के लिए विपन्नता-दायक होगा। अतएव वन-संरक्षण का एक माध्यम दण्ड-व्यवस्था को अपना कर तत्कालीन ऋषियों ने अनूठा आदर्श प्रस्तुत किया है। अग्निपुराण में वृक्षों के पत्तों को तोड़ने वाले, जिन वृक्षों की शाखाओं से अंकुर फूटते हैं, उन स्कन्धों या समूल को नष्ट करने वाले व्यक्ति पर बीस पण अथवा उससे दुगुना दण्ड देने का विधान था। वहाँ कहा गया है कि–

प्ररोहिशाखिनां शाखास्कन्धसर्वविदारणे।
उपजीव्यद्रुमाणां तु विंशतेर्द्विगुणा दमाः॥[21]

अतः व ों (वृक्षों) को संरक्षित रखने के नियमों की सादृश्यता वर्तमान में भारतीय वन अधिनियम 1927 (1927 का अधिनियम संख्यांक-16) की धारा 30 के अधीन या धारा 32 के अन्तर्गत वर्णित है। इस अधिनियम में स्पष्ट उल्लेख है कि जो व्यक्ति धारा 30 के प्रतिकूल किसी वृक्ष की पत्तियों को तोड़ेगा, उसकी छाल उतारेगा अथवा भूमि को निष्प्रयोजन खोदेगा अथवा किसी वृक्ष को अनावश्यक कष्ट पहुँचायेगा, उस व्यक्ति पर धारा 30 के अन्तर्गत छः (6) मास की सजा, 500 रु. तक का जुर्माना या दोनों से दण्ड देने का प्रावधान है।[22] अग्निपुराण के अध्याय 227 के अन्तर्गत वन, खलिहान एवं वृक्षों में आग लगाने वाले मनुष्य को चटाई में लपेटकर जला देने का विधान है–

वृक्षं तु विफलं कृत्वा सुवर्णदण्डमर्हति।[23]

वर्तमान समय में भी वन एवं वृक्ष-संरक्षण हेतु भारतीय वन अधिनियम 1927 की धारा 5 के अन्तर्गत जो व्यक्ति आरक्षित वन में आग लगायेगा या इस निमित्त राज्य सरकार द्वारा बनाये गये किन्हीं नियमों का उल्लंघन करते हुए ऐसी रीति से आग जलायेगा या आग को लगा छोड़ देगा, जिससे वन संकटापन्न हो जाये, वह वन को नुकसान पहुँचाने के कारण ऐसे प्रतिकर के अतिरिक्त जिसका संदाय किया जाना सिद्धदोष करने वाला न्यायालय निर्दिष्ट करे, ऐसी अवधि के कारावास से जो छह मास तक का हो सकेगा

19. म. पु. 154/ 592.
20. संस्कृति के सन्दर्भ, कमलेश माथुर, पोइन्टर पब्लिकेशन, जयपुर।
21. अ. पु. 258/ 25.
22. पर्यावरण मीडिया एवं कानून, रमेश जैन, सबलाइम पब्लिकेशन, जयपुर, 2005.
23. अ. पु. 227/ 32.

www.thearyasamaj.org

या जुर्माने से जो पाँच सौ रूपये तक हो सकेगा या दोनों से दण्डित किया जायेगा।[24]

समस्त वन संरक्षण रूपी प्राचीन एवं आधुनिक प्रयासों के तुलनात्मक विवेचन के सार-संग्रहण के उपरान्त निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि भारतीय पर्यावरण संरक्षण के चिन्तन के अन्तर्गत भारत की पर्यावरणीय परिस्थितियों का यथार्थोन्मुख निरूपण ही नहीं है, अपितु भारत की अनन्य साधारण (वन एवं वृक्षों) दृष्टि का उन्मीलन भी विद्यमान है, जो वन एवं वृक्षों के संरक्षणीय ज्ञान के कल्याणमय अनुप्रयोग से सम्बन्धित महान् लक्ष्य की पूर्ति में सहायक हो सकते हैं। वैश्विक वन एवं वृक्षों के संरक्षण-संवर्धन के लिए पौराणिक मान्यताएँ एवं विचार नि:सन्देह अत्युपयोगी हैं क्योंकि ये भोगवाद के दुष्परिणामों से सन्त्रस्त आधुनिक मानव को वनों के प्रति वांछित आचार-विचार की व्यावहारिक प्रेरणा प्रदान करने में समर्थ हैं। भौतिक उन्नति तथा नैतिक मानसिक उत्थान में परस्पर पूरकता से ही लोकमंगल का आदर्श चरितार्थ हो सकता है। अत: पुराणों में उपलब्ध वनों (वृक्ष, औषधि आदि) के संरक्षण के प्रयासों का सैद्धान्तिक ज्ञान ही नहीं अपितु व्यावहारिक प्रयोग होना अपरिहार्य है जिससे वनों एवं वृक्षों के संरक्षण के प्रति मानव संवेदनशील तथा जागरूक रहे।

अन्यथा वह समय दूर नहीं जब कुपिता प्रकृति पर्वतों को क्या सम्पूर्ण धरातल को रेगिस्तान बनाने में देरी नहीं लगायेगी। इसका पूर्वाभास सभी को केदारनाथ, बद्रीनाथ, गंगा की घुत्तू उत्तरकाशी, रामबाग इत्यादि पहाड़ी इलाके में आई हुई वर्तमान तबाही से हो जाना चाहिए। यह जो कुछ तबाही दिखाई दे रही है उसे देखकर आज सभी एकस्वर से यह कहने में तनिक देरी नहीं लगा रहे हैं कि पर्वतों का खनन, अनेक प्रकार से नदियों को रोक कर जगह-जगह पर मनेरी इत्यादि बांध बांधना, हैलीकौप्टरों के लिए हैलीपैड बनाना, गाड़ियों के लिए पार्किंग बनाना, सेलानियों के लिए बड़े-बड़े होटल बनाना, यह सब विनाश का कारण है।

प्राचीन समय में लोग पैदल जाते तथा छुट्टियों में धर्मशालाओं में रहते थे, आगे बढ़ते थे और इन पर्वतों पर विराजमान भोलेनाथ के दर्शन करते थे। आज सब विपरीत है। आज की इस आरामप्रियता ने सब चौपट कर दिया। एक तरफ प्रकृति का कटान तथा दूसरी तरफ तीर्थस्थानों पर बैठे लोगों द्वारा यात्रियों की जेबों की कटान, इस पहाड़ी कटान का कारण माना जा सकता है। एक ओर प्रकृति की लूट-खसोट, दूसरी ओर स्थानीय व्यापारियों तथा अन्य व्यक्तियों एवं यहाँ तक कि मंदिरों के आस-पास रहने वाले तथा कथित व्यक्तियों की लूट-खसूट को भगवान् भोलेनाथ शिव शंकर अधिक दिन सहन नहीं करने वाले हैं। अब भी प्रकृति का शोषण करने वाली सरकार या अन्य व्यक्तियों तथा मन्दिरों का शोषण करने वाले स्थानीय व्यक्तियों एवं व्यापारियों को इस विषय में विचार अवश्य करना चाहिए।

– ग्राम+पो. चमरौआ, तह. सम्भल, जिला मुरादाबाद-244302 (यू. पी.)

---

24. पर्यावरण मीडिया एवं कानून, रमेश जैन, सबलाइम पब्लिकेशन, जयपुर, 2005.

www.thearyasamaj.org

श्रीमद्भगवद्गीता में अर्जुन के मोह का कारण

--प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल

भारत सहित विश्व इस बात को एक मत से स्वीकार करता है कि श्रीमद्भगवद्गीता कुरुक्षेत्र के मैदान में श्रीकृष्ण के मुख से निकली हुई अमृतवाणी है। यदि यह लिखा जाय कि गीता श्रीकृष्ण के हृदय से निकली हुई शब्द-राशि होने से कृष्णस्वरूप ही है, तो इसमें कोई अत्युक्ति न होगी। गीता एक अद्भुत ज्ञान-निधि है, जिसमें भगवान् श्रीकृष्ण ने न तो किसी विशेष मत का प्रतिपादन किया और न किसी मतविशेष के सिद्धान्त की स्थापना ही की है। प्रत्युत युद्ध के मैदान में लड़ने के लिए एकत्रित, अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित, अपने सम्बन्धियों को देख कर मोह से भ्रमित मन वाले, क्षत्रियधर्म से विमुख, अपने कर्तव्य कर्म से च्युत, नियतकर्म से अनभिज्ञ, सहज-कर्म से विचलित, आर्यत्व से अनार्यत्व और वीरता से कायरता तथा पराक्रम से क्लीबता की ओर बढ़ते हुए गाण्डीवधारी, सव्यसाची, गुडाकेश अर्जुन को उसके स्वधर्म, नियत-कर्म, सहज-कर्म तथा कर्त्तव्य-कर्म का सरल भाषा में युक्तिपूर्वक उपदेश मात्र करते हुए मनुष्यमात्र को भी जीवन में स्वधर्म पर चलने का एक सरल मार्ग दिखाया; न कि अर्जुन को युद्ध करने के लिए बाध्य किया। उन्होंने तो सब कुछ कह कर अन्त में यही कहा कि मैंने तुझे जो कहना था कह दिया। अब युद्ध कर या न कर यह तेरी इच्छा है-**विमृश्यैतद-शेषेण यथेच्छसि तथा करु** (18/63)।

यहाँ सन्देह होना स्वाभाविक है कि जब युद्ध होना निश्चित हो चुका था। युद्ध विषयक नियम बन चुके थे।[1] धृतराष्ट्र की इच्छा के अनुसार युद्ध का सम्पूर्ण वृतान्त सुनाने के लिए महर्षि वेदव्यास संजय को दिव्य दृष्टि का वरदान दे चुके थे।[2] दोनों पक्षों की सेनाएं अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित होकर विजय की आकांक्षा से एक-पक्ष दूसरे पक्ष पर आक्रमण करने के लिए कुरुक्षेत्र के मैदान में व्यूहाकार में खड़ी हो गई थी।[3] युद्ध के प्रारम्भिक संकेत के रूप में कौरव तथा पाण्डवों के सेनापतियों ने अपने-अपने शंख बजा दिए।[4] अन्य वीरों के समान अर्जुन भी विजय की आकांक्षा से उत्साहपूर्वक गाण्डीव को हाथ में उठाए हुए बड़े गर्व के साथ आगे बढ़ा। गर्व के साथ अर्जुन ने दुर्योधन के पक्ष में खड़े हुए और अपने साथ लड़ने का साहस करने वाले बड़े राजाओं को देखने की इच्छा से भगवान् श्रीकृष्ण को दोनों ही सेनाओं के मध्य में रथ को रोकने के लिए कहा।[5] रथ रुका, उसने चारों ओर सेना पर दृष्टि डाली। उसको

1. महाभा. भीष्मपर्व, 1. 27-34.
2. महाभा. भीष्मप. 2. 6-12. 1.
3. भगवद्गीता, 1. 1.
4. भगवद्गीता, 1, 12-18.
5. वही, 2, 21-23.

www.thearyasamaj.org

दिखाई दिया कि सेना में केवल दुर्योधन के पक्षपाती शूरवीर ही नहीं; अपितु हमारे पुत्र, पौत्र, बृद्ध पितामह तथा गुरु द्रोणाचार्य जैसे पूज्य धनुर्धर भी खड़े हैं। इन सबको देखकर सहसा, सम्बन्धियों के प्रति उत्पन्न मोह ने उसके मन पर ऐसा प्रभाव डाला कि, उसे इस युद्ध में विनाश के सिवाय और कुछ भी दिखाई नहीं दिया। वह विचलित हो गया। उसके हाथ-पांव काँपने लगे।[6] उसके शरीर की ऐसी दयनीय स्थिति हो गई कि उत्साह से हाथ में उठाए हुए अपने प्रिय गाण्डीव को भी नीचे रखकर भगवान् श्रीकृष्ण से युद्ध न करने की बात क्यों कहीं?[7]

वस्तुत: एक क्षण के लिए तो श्रीकृष्ण भी अर्जुन के इस प्रकार के व्यवहार से संशय में पड़ गए। पर तत्क्षण ही अर्जुन के मन की इस कमज़ोरी के मूल कारण को समझने में उन्हें देरी नहीं लगी। वे समझ गए कि धृतराष्ट्र ने जिस भाव से अपने मन्त्री संजय को पाण्डवों के समीप भेजा था[8] और संजय ने जाकर सब के सामने ही पांचों पाण्डवों को जो उपदेश दिया था[9], उसका अर्जुन के मन पर जो प्रभाव पड़ा है उसी की प्रतिक्रिया इस समय अर्जुन के विचारों में स्पष्ट रूप से दिखाई दे रही है।[10] यही कारण है कि पुराना वैर चुकाने के लिए बड़े उत्साह से युद्ध क्षेत्र में उपस्थित अर्जुन को यह सब कुछ अब विपरीत दिखाई दे रहा है।[11]

पाठकों को इस दिशा में जिज्ञासा हो सकती है कि संजय ने युद्ध से पूर्व कहाँ और क्या उपदेश पाण्डवों को दिया था, जिसके कारण अर्जुन जैसे वीर के मन की ऐसी दीन-हीन दशा हो गई कि वह धनुषबाण छोड़ कर रथ पर बैठ गया। अत: जब तक उस पूर्व पाठिका का आभास पाठकों को नहीं होगा तब तक यही समझा जायेगा कि अर्जुन को यह मोह युद्ध स्थल में अचानक हो गया। वस्तुत: ऐसा नहीं है। यह धृतराष्ट्र की सामान्त-वादी चाल थी कि पाण्डवों के मन को किसी प्रकार ऐसा प्रभावित किया जाय जिससे वे युद्ध ही न करें। जिससे कुरु वंश का विनाश न हो।

इस प्रकरण में संक्षेप से लिखा जा सकता है कि जब युद्ध होना निश्चित हो गया, युद्ध की सभी मर्यादाएं तथा नियम दोनों पक्षों के सेनापतियों को सुना दिए गए। कौरव तथा पाण्डवों की सेनाएं युद्ध के लिए निश्चित स्थान में जाकर छावनियां बनाकर रहने लगीं, तब पाञ्चालराज द्रुपद ने किसी प्रकार युद्ध को रोकने की दृष्टि से दूत के रूप में अपने पुरोहित को धृतराष्ट्र के पास भेजा।[12] पुरोहित ने भीष्म पितामह, तथा विदुर आदि के समक्ष दुर्योधन तथा कर्ण को धृतराष्ट्र के पास बिठाकर कहा-

हे धृतराष्ट्र! मुझे पाञ्चालराज द्रुपद ने भेजा है। उन्होंने कहा है कि - हे धृतराष्ट्र! पाण्डव पिछली सभी बातों को भूल कर अभी भी सन्धि

6. भगवद्गीता, 1. 28-29.
7. वही, 1. 47.
8. महाभा. उद्यो, 22.39-40.
9. वही, 27.1-27.
10. गीता, 1. 30-46.
11. गीता, 1. 31.
12. महाभा. उद्यो., 20.12.

www.thearyasamaj.org

की इच्छा करते हैं। तुम उनको उनके राज्य का आधा भाग दे दो।[13] पुरोहित द्वारा रखे गए उस सन्धि प्रस्ताव की भीष्म पितामह आदि ने सराहना करते हुए उसे स्वीकार करने की इच्छा प्रकट की।[14] किन्तु कर्ण ने दुर्योधन का पक्ष लेते हुए कहा कि–

हे विद्वद्वर पुरोहित जी! दुर्योधन युद्ध के बिना राज्य का आधा भाग तो दूर रहा, राज्य का चौथा हिस्सा भी पाण्डवों को नहीं देगा।[15]

पुरोहित द्रुपदराजा का सन्देश देकर चला गया। बात नहीं बनी। पुत्र की हठधर्मता से कुरु वंश को विनाश से बचाने के लिए धृतराष्ट्र के पास अब एक ही उपाय था कि वह किसी प्रकार पाण्डवों को ही कौरव वंश के विनाशक इस युद्ध से विरक्त कर सके। इसके लिए धृतराष्ट्र ने नीति–निपुण, अपने मन्त्री संजय को पाण्डवों को समझाने के लिए भेजा।[16]

युद्ध से पूर्व पाण्डवों की सभा में संजय का उपदेश –

(यहाँ संजय का कथन तथा बाद में युद्ध क्षेत्र में अर्जुन द्वारा कहे गए वचनों के लिए तुलनात्मक रूप हैं; दिया जा रहा है। पढ़ने से स्पष्ट होगा कि दोनों में कितनी समानता है)।

धृतराष्ट्र के कहने पर संजय पाण्डवों की छावनी में पहुँचा। संजय ने अपने वहाँ आने का कारण बताते हुए कहा–

हे पाण्डवो! मुझे आपके ताऊ धृतराष्ट्र ने भेजा है। आप सभी मन्त्रियों सहित उनकी बात सुनो।[17] धृतराष्ट्र दोनों पक्षों में सन्धि चाहते हैं और उन्होंने कहा –

हे कुन्तिपुत्रो! आप सर्वगुण सम्पन्न, धर्मात्मा, दयालु, उदारहृदय तथा सम्पूर्ण धर्मों से युक्त और अच्छे– बुरे कर्म के परिणाम को जानने वाले हो।

आप सत्त्वगुण सम्पन्न हो। आपके द्वारा युद्ध जैसा नीच कर्म नहीं किया जा सकता, आप निर्दोष हो। यदि आप में कोई दोष होता तो वह स्पष्ट दिखाई देता। कोई भी आप में तनिक दोष की संभावना नहीं कर सकता।[18] आपका हृदय उदार है, आप हित तथा अहित से पूर्णतः परिचित हैं। मुझे ही नहीं आपको भी इस युद्ध में सभी का विनाश दिखाई दे रहा होगा। जिसका फल केवल पाप है, जो नरक का कारण है। कोई भी अच्छा व्यक्ति ऐसे विनाशकारी युद्ध के लिए प्रयास नहीं करेगा। जिसमें अपने भाई–बन्धुओं, सगे–सम्बन्धियों का विनाश हो।[19]

हे पाण्डुनन्दन! वे धन्य होते हैं, जो अपनी जाति तथा कुटुम्ब के लिए अच्छा कार्य करते हैं। ऐसे ही पुत्र, मित्र तथा बन्धु–बान्धव कहलाने योग्य होते हैं। आप को चाहिए कि आप युद्ध जैसे

---

13. वही, 20. 14.
14. वही, 21. 3.
15. महाभा. उद्यो., 21. 12.
16. वही, 22.1–2.
17. वही, 24. 9–10.
18. वही, 25. 5–6.
19. वही, 25. 7.

www.thearyasamaj.org

निन्दनीय कार्य को छोड़ दें ताकि कुरुवंश का अभ्युदय होता रहे।[20]

यह संजय के उपदेश का एक अंश था जो संजय ने आकर पाण्डवों की छावनी में दिया था। जिसकी छाया अर्जुन के कथन पर स्पष्ट दिखाई दे रही है। अर्जुन भी श्रीकृष्ण को अपने मन के भाव इसी प्रकार कह रहा है। अर्जुन का कथन है कि–

नि हत्य धार्तराष्ट्रान्नः का प्रीतिः स्याज्जनार्दन।
पापमेवाश्रयेदस्मान् हत्वैतानाततायिनः॥[21]

हे जनार्दन! युद्ध के लिए उपस्थित इन धृतराष्ट्र के पुत्रों को मार कर हमारा क्या भला होगा।

यद्यपि राजनीति की दृष्टि से आततायी होने के कारण ये मारने योग्य हैं और आतताप्रियों को मारने में कोई दोष नहीं, पर हैं तो हमारे ही भाई–बन्धु। अतः इनको मारने से हमें पाप ही लगेगा।

पाठक देखें कि संजय और अर्जुन कथन में कितनी समानता है। इससे आगे बढ़ते हुए संजय ने कहा –

''हे पाण्डुनन्दन! आप समय समय पर कौरवों की रक्षा ही करते रहे हैं। आप कुलीन हैं, मुझे आशा है कि ऐसे कुलीन और धर्मात्मा पुत्र युद्ध में अपने भाइयों तथा सम्बन्धियों को मारने जैसा पाप कर्म नहीं करेंगे।[22] जरा विचार कीजिए क्या कोई अपने ही भाइयों को मारकर प्रसन्न हो सकता है। हे कुन्ती के पुत्रो! आप भाईयों के वध जैसा घृणित तथा निन्दनीय पाप कर्म कैसे कर सकते हैं? जिस कार्य से न तो धर्म का लाभ हो सकता है और न अर्थ का, ऐसे नीच कर्म को करने से क्या लाभ? अतः मैं हाथ जोड़कर प्रणाम करके सभी को प्रसन्न करने की इच्छा से आप लोगों की शरण में आया हूँ। आप सभी वही कार्य करें जिससे कौरव वंश का कल्याण हो। मुझे विश्वास है कि भगवान् श्रीकृष्ण अथवा वीर अर्जुन कल्याण प्रदा मेरी बात को ठुकरायेंगे नहीं।[23]

संजय ने अर्जुन की ओर संकेत करते हुए यहां तक कहा कि–

मुझे पूर्ण विश्वास है कि (युद्ध रोकने वाली बात तो क्या) यदि मैं अर्जुन से उसके प्राण भी मांग लूँ तो वह अपने प्राण तक भी मुझे दे सकता है, फिर दूसरी वस्तु के लिए तो कहना ही क्या? अर्थात्

---

20. ते वै धन्याः येः कृतं ज्ञातिकार्यं
ते वै पुत्राः सुहृदो बान्धवाश्च॥
उपक्रुष्टं जीवितं संत्यजेयुः
यतः कुरुणां नियतो वैभवः स्यात्॥
– वही, 25.8.

21. गीता, 1, 36.

22. कथं हि नीचा इव दौष्कुलेया
निर्धर्मार्थं कर्म कुर्युश्च पापैः।
– महाभा. उद्यो. 25.13 (पूर्वार्द्ध)

23. सोऽहं प्रसाद्य प्रणतो वासुदेवं
पाञ्चालानामधिपं चैव वृद्धम्।
कृताञ्जलिः शरणं वः प्रपद्ये
कथं स्वस्ति स्यात् कुरु संजयानाम्॥
– वही, उद्यो. 25. 14.

www.thearyasamaj.org

दुनियां में ऐसी कोई वस्तु मुझे दिखाई नहीं देती जिसको मैं माँगू और अर्जुन उसको मुझे न दे।[24]

हे विद्वद्वरेण्य युधिष्ठिर! मैं यह सब कुछ सन्धिकार्य के लिए कह रहा हूँ। मैं ही नहीं अपितु पितामह भीष्म तथा आपके ताऊ धृतराष्ट्र भी यही चाहते हैं और उनका भी यह सोचना है कि दोनों की सन्धि में शान्ति है, जिसमें कुलवंश का कल्याण निहित है।

(पाठक देखें कि जो बातें संजय ने पाण्डवों को सम्बोधित करके कहीं थी अर्जुन भी सेना के मध्य खड़ा हुआ ठीक उसी प्रकार के भाव से कह रहा है)

अर्जुन श्रीकृष्ण से कहता है कि –

तस्मान्नार्हा वयं हन्तुं धार्तराष्ट्रान् स्वबान्धवान्।
स्वजनं हि कथं हत्वा सुखिनःस्याम माधव॥

(गीता, 1.37)

हे माधव! अपने ही बन्धु कौरवों को मारना अच्छा नहीं। इनको मारकर भला हम सुखी कैसे रह सकते हैं। अर्थात् जब ये ही नहीं रहेंगे, तो हम अपना ऐश्वर्य तथा सुख किस को दिखायेंगे।

संजय ने युद्ध को निन्दित और अनुचित कर्म बताते हुए पाण्डवों को युद्ध न करने की इस प्रकार सलाह दी –

हे पाण्डुपुत्रो! यह सभी जानते हैं कि आपके सभी कार्य धर्म के अनुसार ही होते हैं, आपकी यह धर्ममयी प्रवृत्ति केवल लोक में प्रसिद्ध ही नहीं है, अपितु प्रतिपल आपमें देखी भी गई है। यद्यपि यह जीवन अनित्य है, पर इस अनित्य जीवन में सत्कर्म करने से चिरस्थायि यश की प्राप्ति हो सकती है। अतः आप युद्ध जैसे निन्दित कार्य में प्रवृत्त होकर अपनी कीर्ति को मलिन तथा नष्ट न करें।[25]

संजय ने इससे आगे बढ़ते हुए यह भी कहा था कि –

हे अजातशत्रो! यदि कौरव बिना युद्ध किए आप लोगों को राज्य का कुछ भी हिस्सा न दें, तो आपको फिर भी युद्ध नहीं करना चाहिए। ऐसी स्थिति में मेरा आपको यही सुझाव है कि–"आप अन्धक और वृष्णि वंशीय क्षत्रियों के राज्य में भीख मांगकर अपना जीवन निर्वाह कर लें। पर युद्ध न करें। इसी को मैं आपके लिए कल्याण-कारी मार्ग समझता हूँ, न कि इस युद्ध में अपने कुल का नाश करके राज्य प्राप्त करना।"[26]

अर्जुन भी युद्धक्षेत्र में खड़ा हुआ ठीक इसी प्रकार दीन-हीन भाव से श्रीकृष्ण से कहता है कि–

गुरूनहत्वा हि महानुभावान्
श्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके॥[27]

हे मधुसूदन! जिन्होंने सच्चे हृदय से हमें अस्त्र-शस्त्रों की शिक्षा दी है, ऐसे गुरुओं को मारकर उनके खून से सनी हुई राज्यप्राप्ति की

---

24. महाभा., उद्यो., 25.15.
25. वही, 27.1.
26. भैक्ष्यचर्यामन्धकवृष्णिराज्ये,
श्रेयो मन्ये न तु युद्धेन राज्यम्॥
– वही, 27.2.
27. गीता, 2.5.

www.thearyasamaj.org

अपेक्षा मैं भीख मांगकर जीवन निर्वाह करना कल्याणकारी समझता हूँ।

संजय ने यह भी कहा था कि –हे पाण्डुपुत्रो! आप तो अपने जीवन में क्षमा को ही अधिमान देते रहे हैं, अब ऐसी कौन सी वस्तु है, जिसके लिए आप अपने पूज्य भीष्मपितामह तथा गुरु द्रोणाचार्य की उनके पुत्र अश्वत्थामा के सहित हत्या करना चाहते हैं।[28]

अर्जुन भी भगवान् श्रीकृष्ण के समक्ष यह पक्ष बड़ी दृढ़ता से रखता है कि–

कथं भीष्ममहं संख्ये द्रोणं च मधुसूदन।
इषुभिः प्रतियोत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन॥[29]

हे मधुसूदन! मै सामने खड़े हुए कौरव कुल के स्तम्भभूत वृद्ध पितामह भीष्म तथा परमाराध्य गुरु द्रोण के विरुद्ध वाणों से कैसे लड़ूँगा। हे शत्रु विनाशक श्रीकृष्ण! ये दोनों ही मेरे पूजा के योग्य हैं, न कि बाणों की वर्षा करके मारने योग्य।

संजय ने अपने उपदेश में यह भी कहा था कि–

हे युधिष्ठिर! युद्ध से समुद्र पर्यन्त विशाल इस सम्पूर्ण पृथ्वी को प्राप्त करके भी तुम बुढ़ापा, मृत्यु, सुख-दुःख इत्यादि से नहीं बच सकते। तुम विद्वान् हो, सभी कुछ जानते हो, फिर भी युद्ध क्यों करना चाहते हो। इस विनाशकारी युद्ध के फल से आपको शोक ही होगा, न कि शान्ति। अतः मेरी प्रार्थना है कि दुःख-शोक के मूल इस युद्ध को मत कीजिए।[30]

अर्जुन भी श्रीकृष्ण के समक्ष युद्ध में विरत होने का वही कारण बता रहा है कि–

हे प्रभो! युद्ध करके पृथ्वी का निष्कण्टक राज्य ही नहीं, अपितु देवों का स्वामित्व प्राप्त करने पर भी मैं अपनी इन्द्रियों को सुखा देने वाले उस महान् शोक को दूर करने का कोई उपाय नहीं देख रहा हूँ। अर्थात् इस सब को मार कर मुझे जो शोक होगा वह राज्य प्राप्ति से कदापि दूर नहीं हो सकता।[31]

संजय ने प्रसंगवश यह भी कहा था कि–

हे पाण्डुपुत्र! दुर्योधन के पास बहुत बड़ी सेना है, आपकी सेना में भी अनेक वीर हैं, पर मुझे आपकी सेना में अर्जुन के सिवाय ऐसा कोई भी वीर दिखाई नहीं देता जो भीष्म से रक्षित दुर्योधन की सेना का विनाश कर सके। अतः इस युद्ध में चाहे किसी पक्ष की भी जीत हो, हार हो, पर मैं इस युद्ध में दोनों पक्षों का कल्याण नहीं देख रहा हूँ।[32]

पाठक देखें कि अनेक बार कौरवों को अकेले ही परास्त करने वाला, अपने गाण्डीव की टंकार से ही शत्रुओं को भयभीत करने वाला अर्जुन आज श्रीकृष्ण से क्या बोल रहा है। अर्जुन कहता है कि–

---

28. महाभा., 27. 24-25.
29. गीता, 2. 4.
30. महाभा. उद्यो., 27. 26.
31. गीता, 2. 8.
32. सोऽहं जये चैव पराजये च
निश्रेयसं नाधिगच्छामि किञ्चित्॥
– महाभा. उद्यो. 25.11-12.

www.thearyasamaj.org

हे श्रीकृष्ण! मुझे निश्चय नहीं हो रहा है कि इस युद्ध में हमारी सेना की जीत होगी या शत्रुसेना की। ऐसी अनिश्चितता की स्थिति में मैं अपने बन्धु-बान्धवों का विनाश करना या कराना उचित नहीं समझ रहा हूँ। अतः मैं किसी भी प्रकार युद्ध नहीं करना चाहता।[33]

युद्ध न करने के विषय में अर्जुन द्वारा दी गई सभी युक्तियों को भगवान् श्रीकृष्ण ने बड़े धैर्य से सुना। एक बार भी उस को बीच में नहीं टोका और न कुछ कहा। अर्जुन बीच-बीच में जो शंका करता, भगवान् श्रीकृष्ण उसका केवल मात्र समाधान करते। अर्जुन कहता रहा, श्रीकृष्ण बड़े धैर्य से सुनते रहे। वे जान गए कि संजय द्वारा दिए गए उपदेश से प्रभावित, मोह से ग्रसित होने के कारण, सेना में उपस्थित कुटुम्बिजनों को देखकर ही अर्जुन को अब यहाँ सब कुछ विपरीत नज़र आ रहा है।[34] अन्यथा जीवनभर शत्रुओं से बदला लेने के लिए श्रमसाध्य तपस्या से अजेय, अस्त्र-शस्त्रों को प्राप्त करने वाला परंतप, तपस्वी, गुडाकेश, सव्यसाची वीर अर्जुन कैसे इस प्रकार बोल सकता है? तब श्रीकृष्ण ने कुछ मुस्कराते हुए अर्जुन को कहना प्रारम्भ किया।[35]

हो सकता है कि साधारणतः व्यक्ति सोचे कि यदि अर्जुन युद्ध नहीं करना चाहता था तो श्रीकृष्ण ने बलात् उसको विनाशकारी युद्ध की विभीषिका की ओर क्यों धकेला? स्वयं अर्जुन को भी यह शंका हो गई थी। इसीलिए उसने भी श्रीकृष्ण से प्रश्न किया था कि आप मुझे इस भयंकर कर्म में क्यों लगा रहे हैं?[36]

गीता के पाठक देखेंगे कि श्रीकृष्ण ने अर्जुन को कहीं भी युद्ध करने की आज्ञा नहीं दी और न युद्ध करने की बात कही। वस्तुतः युद्ध का तो पाण्डवों का अपना ही निर्णय था। वे स्वयं ही युद्ध के लिए प्रवृत्त हुए थे। यहाँ तक कि संजय के उपदेश के बाद युधिष्ठिर भी युद्ध से विमुख होना चाहते थे, पर वहाँ अर्जुन ने ही युधिष्ठिर को युद्ध के लिए पुनः तैय्यार किया था।[37] युद्ध निर्णय के बाद ही तो अर्जुन श्रीकृष्ण के पास सहायता के लिए गया था।[38] श्रीकृष्ण ने उसी समय स्पष्ट कह दिया कि एक ओर मेरी नारायणी सेना और दूसरी ओर मैं, वह भी निःशस्त्र।[39] अर्जुन ने श्रीकृष्ण को ही लिया।[40] श्रीकृष्ण ने उसका सारथि बनना स्वीकार किया। अब युद्ध के प्रारम्भ में सब कुछ होने पर अर्जुन अपने कर्म से विमुख हो रहा था ऐसी परिस्थिति में भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को केवल उसके कर्त्तव्य मात्र का उपदेश किया। युद्ध तो अवश्यंभावी था, उसको किसी प्रकार भी टाला नहीं जा सकता था। अगर युधिष्ठिर और अर्जुन

---

33. न चैतद्विद्मः कतरन्नो गरीयो
    यद् वा जयेम यदि वा नो जयेयुः।
    – गीता, 2. 6.
34. गीता, 1. 31.
35. वही, 2. 1-3.
36. वही, 3. 11.
37. महा. भीष्मपर्व, 21, 17; 22. 1.
38. महा. उद्यो. 7, 6-18.
39. ते वा युधि दुराधर्षा भवन्त्येकस्य सैनिकाः।
    अयुध्यमानः संग्रामे यस्य शस्त्रोऽहमेकतः॥
    – वही, 7. 19.
40. वही, 7. 21-22.

www.thearyasamaj.org

युद्ध से विमुख हो भी जाते तब भी कुन्ती के कहने पर भीम आदि युद्ध करते। यदि पाँचों पाण्डव भी किसी प्रकार युद्ध से पीछे हट जाते तो द्रौपदी इस युद्ध को अवश्य करवाती, क्योंकि द्रौपदी को दु:शासन द्वारा किए गए अपमान की ज्वाला रात-दिन सन्तप्त करती रहती थी। इसीलिए द्रौपदी पहले ही श्रीकृष्ण को कह चुकी थी कि यदि मेरे पति (पांचों पाण्डव) युद्ध नहीं करेंगे तो मेरे पिता द्रुपद और मेरा भाई धृष्टद्युम्न तथा मेरे पाँचों पुत्र अभिमन्यु को आगे कर के कौरवों सेयुद्ध अवश्य करेंगे।[41]

भगवान् श्रीकृष्ण तो आए ही इसीलिए थे।[42] ऐसी स्थिति में युद्ध कैसे रुक सकता था। युद्ध श्रेत्र में जो बड़े बड़े योद्धा उपस्थित थे, जिनका नाम अर्जुन ने बड़े आदर से लिया था, उन सभी की आयु समाप्त हो चुकी थी। भगवान् श्रीकृष्ण की दृष्टि में वे सभी मरे हुए थे क्योंकि वे भी अपने कर्म से संच्युत हो चुके थे। अर्जुन तो केवल निमित्तमात्र था।[43] इसीलिए अर्जुन के सिवाय इस युद्ध में और कोई वचने वाला नहीं था।[44]

गीता के पढ़ने से स्पष्ट है कि भगवान् श्रीकृष्ण ने तो अर्जुन को केवल उसके कर्त्तव्य का ज्ञान मात्र कराया। युद्ध न करने से होने वाली हानि[45] तथा युद्ध करने से प्राप्त फल प्राप्ति की जानकारी मात्र दी।[46] साथ ही स्व-कर्म से भटक रहे अर्जुन को कर्म की पटरी पर खड़ा होने मात्र का उपदेश दिया।[47] युद्ध करना न करना यह तो उसके ऊपर ही छोड़ दिया और कहा कि हे अर्जुन! जो कुछ मैंने तुम्हें कहा है यह केवल मेरा ही कथन नहीं, शास्त्र भी यही कहते हैं।[48] अतः शास्त्र के कथनानुसार भी तुझे अपने कर्म को समझकर काम करना चाहिए। न कि शोस्त्रविधि को छोड़ कर। जो शास्त्रविधि को छोड़कर स्वच्छन्द होकर या भावुकता वश कार्य करते हैं, वे इस लोक में तो कुछ नहीं कर पाते, परलोक में भी कष्ट उठाते हैं।[49] इसलिए मैंने जो कुछ भी तुझे कहा वह शास्त्र के अनुरूप ही कहा। अब तू मेरे कथन पर अच्छी प्रकार विचार कर, जैसा तुझे अच्छा लगता है वैसा कर[50]। सब कुछ कहने के बाद अन्त में पूछा कि हे अर्जुन! जो कुछ मैंने तुझ से कहा क्या वह तूने सावधानी से सुना, अथवा नहीं। हे धनञ्जय! क्या अब तेरा अज्ञान से उत्पन्न

---

41. यदि भी मार्जुनौ कृष्ण कृपणौ सन्धिकारकौ।
पिता मे योत्स्यते वृद्धः सहपुत्रैः महारथैः।
पञ्च चैव महावीर्याः पुत्रा मे मधुसूदन।
अभिमन्युं पुरस्कृत्य योत्स्यन्ते कुरुभिः सह॥
– महा. उ. 82-37
42. गीता, 4.7-8.
43. वही, 11.33-34.
44. वही, 11.32.
45. वही, 2, 33-36.
46. वही, 2.37.
47. वही, 2.8; 19; 35; 18.47-48
48. वही, 17.16
49. वही, 17.23
50. वही, 18.63

www.thearyasamaj.org

मोह नष्ट हुआ।[51] श्रीकृष्ण के ऐसे वचन सुनकर अर्जुन स्थिर हूँ कहता है कि –हे प्रभो! आपकी कृपा से मेरा मोह नष्ट हो गया। मुझे सब कुछ याद आ गया। अब मैं स्थिर हूँ मेरा सारा सन्देह दूर हो गया। अब आपकी आज्ञा का पालन करूँगा।[52]

यहाँ पाठक देखेंगे कि अर्जुन ने भी अन्त में भगवान् श्रीकृष्ण के पूछने पर युद्ध करने की बात न कहकर यही कहा कि- मैं आपकी आज्ञा का पालन करूँगा और उसी समय से युद्ध के अन्त तक वह श्रीकृष्ण के कथनानुसार युद्ध करता रहा। जिससे वह अपने मन्तव्य में सफल भी हुआ। अन्यथा हो सकता था कि वह इच्छामृत्यु प्राप्त अजेय, धनुर्धर भीष्मपितामह जैसे शक्तिशाली एवं कर्ण जैसे वीर को नहीं मार सकता।

भगवान् श्रीकृष्ण का यह कल्याणकारी उपदेश मानवमात्र के लिए है, न कि केवल अर्जुन के लिए। ''अर्जुन तो भगवान् के प्रत्येक कार्य के लिए निमित्तमात्र है''। जैसा उन्होंने स्वयं भी कहा कि–अर्जुन तू तो निमित्तमात्र है। इस कर्मभूमि में अर्जुन जैसी स्थिति किसी की भी हो सकती है। जब कोई अर्जुन जैसी स्थिति में हो और किसी के सामने अपना दुःख सुनाना चाहता हो, मन की गुत्थी को किसी के द्वारा सुलझाना चाहता हो, जिसके सामने वह अपने मन के भाव रखना चाहता है उसका कर्त्तव्य है कि वह उसकी बात धैर्यपूर्वक सुने।

दुःखी के हृदय के गुब्बार बाहर आने तक, बीच में किसी प्रकार की टोका-टाकी न करे। जब वह पूर्णरूप से अपने मन की बात या सन्देह या कोई अन्य विचार सुनने वाले के सामने रखले तब वह श्रोता उसकी बातों को सुनकर उससे होने वाले लाभ या हानि को उसके सामने रखे। उसको किसी कार्य में बलात् प्रवृत्त या उससे निवृत्त करने की न चेष्टा करे और न उसको आज्ञा ही दे। केवल उस कार्य के न करने से उत्पन्न होने वाली हानि, और कार्य करने से उत्पन्न होने वाले लाभ अथवा करने से उत्पन्न होने वाली हानि और न करने से उत्पन्न होने वाले लाभ मात्र का वर्णन करे। इससे यह लाभ होगा कि दुःखी का हृदय हल्का होगा, उसको प्रसन्नता होगी कि जिसको मैं अपनी बात सुनाना चाहता था उसने मेरी बात सुन ली। बस इतना ही उसके लिए बहुत होगा, इससे वह अपने अन्दर के दुःख को बहुत कुछ कम करने में सफल हो सकता है।

–संचालक, वी. वी. आर. आई., साधु आश्रम, होशियारपुर।

---

51. वही, 18.72
52. वही, 18.73

www.thearyasamaj.org

विविध समाचार

स्वतन्त्रता-दिवस-समारोह –

स्वतन्त्रता-दिवस के उपलक्ष्य में 15-8-2013 बृहस्पतिवार को पंजाब विश्वविद्यालय, साधु आश्रम, होश्यारपुर में प्रात: प्रो. कृष्णमुरारि शर्मा जी के द्वारा राष्ट्रीयध्वज फहराया गया।

इस अवसर उन्होंने स्वतन्त्रता-दिवस के महत्त्व तथा देशभक्ति से संबंधित अपने विचार प्रकट किए। इस शुभ अवसर पर पंजाब विश्वविद्यालय पटल के निदेशक प्रो. डॉ. प्रेमलाल शर्मा तथा सभी प्रोफेसर, कर्मिष्ठ और छात्र-छात्राएं उपस्थित थे।

भारतीय पेट्रोलियम संस्थान में 40वीं आंतरिक हिंदी वैज्ञानिक संगोष्ठी का आयोजन–

भारतीय पेट्रोलियम संस्थान, देहरादून के राजभाषा अनुभाग द्वारा आयोजित आंतरिक हिंदी वैज्ञानिक संगोष्ठियों के क्रम में "**40वीं आंतरिक हिंदी वैज्ञानिक संगोष्ठी**" का आयोजन गत दिवस संस्थान के सर सी. वी. रमन व्याख्यान-कक्ष में किया गया।

वैज्ञानिक संगोष्ठी का उद्घाटन करते हुए कार्यकारी निदेशक डॉ. एस. एम. नानोटी ने कहा कि संस्थान के राजभाषा अनुभाग द्वारा आयोजित संगोष्ठियां निश्चित रूप से वैज्ञानिकों को उत्प्रेरित करने वाली हैं। संस्थान ने विज्ञान के क्षेत्र में तो अग्रणी भूमिका निभाई ही है, इसके साथ-साथ राजभाषा अनुभाग द्वारा प्रकाशित हिंदी पत्रिका 'विकल्प' पर प्राप्त दो राष्ट्रीय पुररकार राजभाषा के क्षेत्र में संस्थान की अत्यंत महत्वपूर्ण उपलब्धियां हैं। वैज्ञानिक क्षेत्रों में हिंदी में आयोजित संगोष्ठियों से संस्थान निश्चित रूप से अनुकरणीय कार्य करेगा। 'विकल्प' के माध्यम से हमारा अनुसंधान देश के कोने-कोने तक पहुंच सकता है। राजभाषा अनुभाग इस हेतु बधाई का पात्र है। संगोष्ठी का संचालन करते हुए संगोष्ठी के संयोजक तथा संस्थान के राजभाषा अनुभाग के प्रभारी डॉ. दिनेश चन्द्र चमोला ने कहा कि विज्ञान की सेवा राष्ट्र की सेवा है, यदि वह अपनी राजभाषा अथवा राष्ट्रभाषा में सम्पन्न हो तो उसका महत्व कई गुणा अधिक बढ़ जाता है। प्रयोगशालाओं के संचित ज्ञान को जन-जन तक पहुंचाने में ऐसी संगोष्ठियाँ उत्प्रेरक का कार्य कर सकती हैं। संगोष्ठी को सफल बनाने में विशेषरूप से श्री मुकेश चंद्र रतूड़ी, श्री देवेन्द्र राय, श्री दीपक कुमार एवं डॉ. दिनेश चंद्र चमोला का योगदान रहा। अंत में धन्यवाद ज्ञापन प्रस्ताव डॉ. चमोला ने ज्ञापित किया।

–डॉ. दिनेश चन्द्र चमोला

प्रभारी, राजभाषा अनुभाग भारतीय पेट्रोलियम संस्थान, देहरादून-248005

शीतल पेय बच्चों में आक्रामकता बढ़ाते हैं –

वाशिंगटन, 16 अगस्त (प. स.) – शीतल पेयों का अधिक सेवन करने से बच्चों में आक्रामकता और ध्यान केंद्रित करने में समस्या आती है तथा समाज से अलग-थलग रहने की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिलता है। कोलंबिया यूनिवर्सिटी के मेलमैन स्कूल ऑफ पब्लिक हैल्थ,

www.thearyasamaj.org

यूनिवर्सिटी ऑफ वेरामोंट तथा हार्वर्ड स्कूल ऑफ पब्लिक हैल्थ ने इस संबंध में 5 साल के करीब 3,000 बच्चों के खानपान की आदतों का अध्ययन किया।

फेसबुक लोगों को उदास बनाती है–

न्यूयार्क, 16 अगस्त (इंट) – सम्भवतया आप अपने अनुभव से जान गए होंगे कि सोशल नैटवर्किंग वैबसाइट फेसबुक का इस्तेमाल आपको उदास और दुखी कर सकता है। यूनिवर्सिटी ऑफ मिशीगन के शोधकर्त्ताओं द्वारा किए अध्ययन में भी इस बात की पुष्टि हुई है। शोधकर्त्ताओं के मुताबिक वैबसाइट के इस्तेमाल के बाद लोग बुरा और असंतुष्ट महसूस करने लगते हैं।

सी. एस. आई. आर. – भारतीय पैट्रोलियम संस्थान में 15वें राजभाषा हिन्दी विशिष्ट व्याख्यान का अयोजन –

सी. एस. आई. आर. – भोपसं, देहरादून के राजभाषा अनुभाग द्वारा पिछले वर्षों से सतत आयोजित '**राजभाषा हिन्दी विशिष्ट व्याख्यानमाला**' के **15वें** व्याख्यान में गत दिनों जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली के '**भारतीय भाषा केन्द्र**' के प्रमुख प्रो. राम बक्ष जाट मुख्य अतिथि के रूप में पधारे। प्रो. जाट ने '**राजभाषा हिन्दी और अनुवाद**' विषय पर अपने अनुभवपूरित विचार व्यक्त किए। उन्होंने कहा कि अनुवाद का वैश्वीकरण/भूमंडलीकरण से गहरा संबंध है। इस भूमंडलीकरण का जनक देश अर्थात् अमेरिका यह चाहता है कि संसार के सभी मनुष्यों का खान–पान, स्वाद, पहनावा, मनोरंजन, संगीत और भाषा भी एक जैसी हो। विश्व–बाजार को अधिक भाषाओं की आवश्यकता नहीं है। इसलिए भूमंडलीकरण की यह शताब्दी के चलते देश के विभिन्न प्रान्त द्विभाषी अर्थात् प्रांतीय भाषा व अंग्रेजी बोलने वाले हो गए हैं। यह प्रभाव इतना गहरा है कि कभी हिन्दी का विरोध करने वाले दक्षिण भारत में अपनी प्रांतीय भाषाएं बचाने का संघर्ष प्रारंभ हो गया है।

इस अवसर पर संस्थान के कार्यकारी निदेशक डॉ. एस. एम. नानोटी ने मुख्य अतिथि का स्वागत किया और हिन्दी के प्रचार–प्रसार के लिए संस्थान द्वारा की जाने वाली गतिविधियों की चर्चा व सराहना की।

इस अवसर पर प्रतिभागियों ने कई व्यावहारिक प्रश्न पूछकर अपनी जिज्ञासाओं को भी प्रदर्शित किया। अंततः संस्थान की ओर से श्री सुरेन्द्र कुमार, प्रशासन अधिकारी ने धन्यवाद ज्ञापित किया।

– डॉ. दिनेश चन्द्र चमोला

प्रभारी, राजभाषा अनुभाग भारतीय पेट्रोलियम संस्थान, देहरादून–248005

www.thearyasamaj.org

संस्थान-समाचार

दान–

	रु.
Sh. K. K. Sharma, Slough Berks (U.K.)	18180/-
मेजर बी. आर. दीवान (सेवानिवृत्त), सैक्टर 16, फरीदाबाद	2500/-
श्रीमती उषा चोढ़ा, सरीता विहार, नई दिल्ली	2100/-
श्री चन्द्रमोहन खन्ना, पश्चिम विहार, नई दिल्ली	1100/-
श्री डी. जी. शर्मा, पारस शहर, भोपाल (म. प्र.)	1000/-
स्वामी राम स्वरूप योगाचार्य, टीकालेहेसर, जिला कांगड़ा (हि. प्र.)	500/-

---

हवन-यज्ञ–

विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान के कार्य-दिवस का शुभारम्भ प्रति सप्ताह के प्रथम दिन सत्संग-मन्दिर में हवन-यज्ञ से हुआ।

अगस्त, 2013 के द्वितीय रविवार को संस्थान के सत्संग-मन्दिर में परम पूज्य स्वामी सत्यानन्द जी महाराज के द्वारा चलाई गई परम्परानुसार उनके भक्तों के द्वारा अमृतवाणी का पाठ किया गया।

www.thearyasamaj.org

ज्ञानतो वीर्यतो राजन्, धनतो जन्मतस्तथा।
शीलतस्तु प्रधाना ये, ते प्रधाना मता मम॥

भविष्यपुराण, 1, 4, 99

जो व्यक्ति ज्ञान, शक्ति, धन, जन्म, सत्स्वभाव से श्रेष्ठ हैं। मनीषियों की दृष्टि से वस्तुतः वह ही श्रेष्ठ हैं अर्थात् व्यक्ति का सर्वोत्तमगुण उत्तमस्वभाव है।

❋

हार्दिक शुभ कामनाओं सहित :

श्रीमती सरोज बाला

(सेवानिवृत्त प्रिंसिपल)

अमर आवास 12, प्रोफेसर कालोनी,

कपूरथला।

www.thearyasamaj.org

स पण्डितः स च ज्ञानी, स क्षेमी स च पुण्यवान्।
गुरोः वचस्करो यो हि, क्षेमं तस्य पदे पदे॥

ब्रह्मवै. पु. 1. 23, 7

जो व्यक्ति गुरु अर्थात् अपने बड़े पूजनीय व्यक्तियों की आज्ञा का पालन करता है, वही पण्डित, ज्ञानी, कल्याणकारी तथा पुण्यात्मा है, ऐसे ही व्यक्ति का प्रत्येक समय कल्याण होता है।

स्व. श्री आर. एल. लाम्बा
12. 12. 2008
(पिता जी)

स्व. श्रीमती रामरखी लाम्बा
6. 9. 2009
(माता जी)

की
पावन स्मृति
में
सादर समर्पित

प्रयोजक वर्ग :

डॉ. मंगतराम लाम्बा एवं वन्दना लाम्बा

लाम्बा नर्सिंग होम,
धर्मपुर (जिला सोलन), हि. प्र.

www.thearyasamaj.org

एकः परोपकारस्तु संसारेऽस्मिन्ननश्वरः।
यो धर्मयशसी सूते युगान्तशतसाक्षिणी॥

कथासरित्सागर, 12, 23. 20

इस नश्वर संसार में केवल परोपकार ही अनश्वर (नष्ट न होने वाला) है। परोपकार गुण और यश को प्रदान करते हुए सैकड़ों युगों तक साक्षी रहता है।

स्व. श्री ए. आर. लाम्बा

जून, 1944
(पिता जी)

स्व. श्रीमती रामरखी लाम्बा

6. 9. 2009
(माता जी)

स्व. कुमारी प्रोमिला लाम्बा

24. 6. 2010
(दीदी)

की पावन स्मृति में सादर समर्पित

प्रयोजक वर्ग :

डॉ. मंगतराम लाम्बा एवं वन्दना लाम्बा

लाम्बा नर्सिंग होम, धर्मपुर (जिला सोलन), हि. प्र.

www.thearyasamaj.org

दानं श्रेयस्करं पुंसां दानं श्रेष्ठतमं परम्।
दानवानेव लोकेषु पुत्रत्वे ध्रियते सदा॥

मत्स्यपु. 224. 7

संसार में दान ही पुरुषों का श्रेय करने वाला है, दान ही सर्वश्रेष्ठ कर्म है, दान देने वाले व्यक्ति की लोक में पुत्र के समान प्रतिष्ठा होती है। अतः दान सबसे श्रेष्ठ तथा प्रिय कर्म है।

स्व. श्री खुशीराम जी महाजन
स्व. श्रीमती दुर्गा देवी जी महाजन
स्व. श्री द्वारकानाथ जी महाजन
स्व. श्रीमती प्रेम लता महाजन
स्व. श्रीमती प्रतिभा महाजन

की

पुण्यस्मृति

में

सादर समर्पित

प्रयोजक :

श्री भागमल महाजन धर्मार्थ न्यास

एल. बी. एस. मार्ग, बिखरोली, मुम्बई।

www.thearyasamaj.org

यस्मादभावी भावी वा मनुष्यः सुख-दुःखयोः।
आगमे यदि वापाये न तत्र ग्लपयेन्मनः॥
महा अ. प. 176. 26

संसार में सुख चाहने वाला मनुष्य सुख और दुःख पाने में अपने को असमर्थ समझकर कभी भी मन में ग्लानि न करे अर्थात् कभी भी मन में दुःखी न हो कि मुझे सुख प्राप्त नहीं हुआ।

स्व. श्री योगेन्द्रपाल जी खन्ना

[जिनका निधन : 13-10-1973 को हुआ]

की

पुण्यस्मृति

में

सादर समर्पित

प्रयोजक :

श्री चन्द्रमोहन खन्ना [पुत्र],

नितिन खन्ना एवं मनीष खन्ना [पौत्र]

एम. के कम्प्यूटर्ज़, 207, भेरा इनक्लेव, पश्चिम विहार,

नई दिल्ली- 110 087

www.thearyasamaj.org

माता पित्रोर्गुरुणां च पूजा बहु मता मम।
इह युक्तो नरो लोकान् यशश्च महद् अश्नुते॥

महा. शां. प. 103. 3

भीष्मपितामह कह रहे हैं कि इस संसार में माता, पिता और गुरु का सत्कार करना मेरे विचार से सबसे श्रेष्ठ कर्म है। जो व्यक्ति अपने जीवन में इनकी पूजा करता है वह व्यक्ति सर्वत्र विजय प्राप्त करता है तथा यशस्वी होता है अर्थात् यश प्राप्त करता है।

अपने पूज्य पिता

स्व. पंडित गण्डाराम शर्मा

तथा

अपनी पूज्या माता

स्व. श्रीमती कलावती शर्मा

एवं

स्व. श्रीमती सरला शर्मा

की

पुण्य स्मृति

में

सादर समर्पित

प्रयोजक :

श्री डी. जी. शर्मा

वी-3-004, पारस शहर, भोपाल [म. प्र.]- 432 016

www.thearyasamaj.org

तदसारेऽत्र संसारे सारं दीनेषु या दया।
कृपणेषु च यद्दानं गुणवान्क्व न जीवति॥

कथासरित्सागर, 10, 10, 34

इस निस्सार संसार में एकमात्र सार दीन-हीनों पर की गई दया और दरिद्रों को दिया गया दान ही है। वस्तुतः, गुणवान् ही इस संसार में जीता है।

परमपूज्या माता जी

श्रीमती इन्द्रा देवी जिन्दल

[धर्मपत्नी स्व. बुधराम जिन्दल जी]

पुण्यतिथि

8 अक्तूबर, 2009

की

पावन स्मृति में

सादर समर्पित

प्रयोजक :

श्री प्रभुदयाल बुधराम जिन्दल चेरिटेबल ट्रस्ट

कार्यालय : बुधराम एण्ड सन्ज़, 7, नई सब्जी मण्डी, होशियारपुर।

www.thearyasamaj.org

With best compliments from

NABL Accredited & ISO–9001–2008 Certified Laboratory

M/s. Manada Test House

DHANAUNI ROAD, NEAR LORD MAHAVIR JAIN PUBLIC SCHOOL,
DERABASSI (PB.) – PIN 140507
PH.: 01762–280808, 09878058808

Activities in brief :—

1. *Geotechnical investigation/exploration/testing – (both in the field and laboratory)— in connection the construction of all types of Building, Bridges & Culverts, Highways, Over Head Reservoirs etc. and use of soil for other construction purpose.*
2. *Testing of Building & Road Materials- e. g. Cement, Steel, Coarse and Fine Aggregate Wood, Bricks, Tiles, Admixture, Bitumen, Emulsion, Building Stone, Water, Aluminimum Section etc.*
3. *Testing of highway by–Benkelman Beam Deflection Technique and CBR method to Assess the overlay thickness and for designing road crust required for desired traffic intensity.*
4. *Deflection test on concrete slabs and assessing compressive strength by non destructive method (Rebound hammer, make : Schmidt, Switzerland).*
5. *Mix Designs for various grades of Concrete, Shotcrere and bituminous mixes for road by Marshall method.*
6. *Testing of water for industrial and construction purposes.*
7. *Destructive testing of harden concrete by core cutter and ultrasound pulse Velocity Method.*

— Dr. S. P. Kothiyal
Proprietor

WEBSITE :— www.manandatesthouse.com

www.thearyasamaj.org

(संस्थान) सत्संग मन्दिर

वी. वी. आर. आई. सोसाईटी, होश्यारपुर (पंजाब) की ओर से प्रकाशक व मुद्रक प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल द्वारा वी. वी. आर. इन्स्टीच्यूट प्रैस, पो. आ. साधु-आश्रम, होश्यारपुर से छपवा कर, वी. वी. आर. इन्स्टीच्यूट, पो. आ. साधु-आश्रम, होश्यारपुर-१४६ ०२१ (पंजाब) से २८-८-२०१३ को प्रकाशित।